आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या JaipurCity/413/2015-17
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 अक्टूबर, 2015
वर्ष : 73 ★ अंक : 10 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 अक्टूबर, 2015★आश्विन, 2072

ISSN 2249-2011

हिन्दी मासिक

जिनवाणी

आचार्य हीरा : आचार्यपद रजत साधनावर्ष

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा कल्याणी।
द्रोह-मोह-छल-मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी'।।

संसार की समस्त सम्पदा और भोग
के साधन भी मनुष्य की इच्छा
पूरी नहीं कर सकते हैं।

- आचार्य हस्ती

आवश्यकता जीवन को चलाने
के लिए जरूरी है, पर इच्छा जीवन
को बिगाड़ने वाली है,
इच्छाओं पर नियंत्रण आवश्यक है।

- आचार्य हीरा

जिनका जीवन बोलता है,
उनको बोलने की उतनी जरूरत भी नहीं है।

- उपाध्याय मान

With Best Compliments :
Rajeev Nita Daga Foundation Houston

Jai Guru Heera

Jai Guru Hasti

Jai Guru Maan

2976

Rec 19/10/15

।। जैनं जयति शासनम् ।।

दान से पुण्य होता है, पर संयम से कर्मों की निर्जरा होती है।
दान हृदय की सरलता है, पर संयम हृदय की शुद्धता है ।।

DP Exports is leading Indian firm specializing in import, export and manufacture of diamonds and jewellery. We offer a wide range of rough diamonds, along with a specialization in the field of manufacturing polished diamonds and jewellery.

timeless jewels
unmatched quality
flawless craftsmanship

Dharamchand Paraschand Exports

1301, Panchratna, Opera House, Mumbai - 400 004. India.
t: +91 22 2363 0320 / +91 22 4018 5000
f: +91 22 2363 1982 email : dpe90@hotmail.com

31996

।। महावीराया नमः ।।

जय गुरु हस्ती

जय गुरु हीरा　　जय गुरु मान

जिस दिन श्रद्धा जग जायेगी, अनमोल-दुर्लभ परम अंग रूप मानव जीवन को समर्पण करते देर नहीं लगेगी। श्रद्धा है तो प्राण अर्पण भारी नहीं लगेगा।

-आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments From :

S. .D. GEMS & SURBHI DIAMONDS

Prakash Chand Daga

Virendra Kumar Daga (Sonu Daga)

FC51, Bharal-Diamond Bourse, Bandra Kurla Complex,
Bandra (E), MUMBAI-400051 (MAH.)
Ph. : (O) 022-23684091, 23666799 (R) 022-28724429
Fax : 022-40042015 Mobile : 098200-30872
E-mail : sdgems@hotmail.com

Jai Guru Heera　　Jai Guru Hasti　　Jai Guru Maan

व्यसनी से उसी प्रकार बचना चाहिये, जिस प्रकार छूत के रोगी से बचा जाता है।

- आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments from :

Basant Jain & Associates, Chartered Accountants
BKJ & Associates, Chartered Accountants
BKJ Consulting Private Limited
Megha Properties Private Limited
Ambition Properties Private Limited

601, Dalamal Chambers, New Marine Lines, Mumbai-400020

बसंत के. जैन

अध्यक्ष : श्री जैन रत्न युवक परिषद, मुम्बई
ट्रस्टी : गजेन्द्र निधि ट्रस्ट

Tel. : (O) 22018793, 22018794 (R) 28810702

जिनवाणी
हिन्दी-मासिक

卐 **संरक्षक**
अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राज.), फोन-2636763

卐 **संस्थापक**
श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

卐 **प्रकाशक**
विनयचन्द डागा, मंत्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर-302003(राज.)
फोन-0141-2575997, फैक्स-0141-2570753

卐 **प्रधान सम्पादक**
प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन
सामायिक-स्वाध्याय भवन, प्लॉट नं. 2,
नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन : 0291-2626279
E-mail : jinvani@yahoo.co.in
E-mail : editorjinvani@gmail.com

卐 **सह-सम्पादक**
नौरतन मेहता, जोधपुर
डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर

卐 **भारत सरकार द्वारा प्रदत्त**
रजिस्ट्रेशन नं. 3653/57
डाक पंजीयन सं.-JaipurCity/413/2015-17
ISSN 2249-2011

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

जे लक्खणं च सुविणं च,
अंगविज्जं च जे पउंजंति।
न हु ते समणा वुच्चंति,
एवं आयरिएहिं अक्खायं॥

-उत्तराध्ययन सूत्र, 8.13

लक्षण, स्वप्न, अंगविद्या का,
जो मुनि जनता में करे प्रयोग।
श्रमण नहीं कहलाते वे,
आचार्य कहें धर कर उपयोग॥

अक्टूबर, 2015
वीर निर्वाण संवत्, 2541
आश्विन, 2072

वर्ष 73 अंक 10

सदस्यता शुल्क

त्रिवार्षिक : 250 रु.
20 वर्षीय, देश में : 1000 रु.
20 वर्षीय, विदेश में : 12500 रु.
स्तम्भ सदस्यता : 21000/-
संरक्षक सदस्यता : 11000/-
साहित्य आजीवन सदस्यता- 4000/-

एक प्रति का मूल्य : 10 रु.

शुल्क/साभार नकद राशि 'जिनवाणी' बैंक खाता संख्या SBBJ 51026632986
IFSC No. SBBJ 0010843 में जमा कराकर जमापर्ची (काउन्टर-प्रति) अथवा ड्राफ्ट भेजने का पता
'जिनवाणी', दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)
फोन नं.0141-2575997, 2571163, फैक्स : 0141-2570753, E-mail:sgpmandal@yahoo.in

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर, फोन- 0141-2562929

नोट- यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो।

विषयानुक्रम

सम्पादकीय-	न्यूयार्क में पुर्यषण पर्व	-डॉ. धर्मचन्द जैन	7
अमृत-चिन्तन-	आगम-वाणी	-संकलित	12
विचार-वारिधि-	परिग्रह-परिमाण	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.	14
प्रेरक-संदेश-	आचार्यप्रवर श्री हीरा का संदेश	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.	15
प्रवचन-	संत-समागम से बदलें जीवन	-अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा.	19
	सर्व हितकारी प्रवृत्ति एवं आत्म-विकास	-तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा.	23
	अतिजात बनें, अपजात नहीं	-श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी म.सा.	27
शोधालेख-	जैनधर्मदर्शन में समाधिमरण आत्महत्या नहीं	-प्रो. सागरमल जैन	29
	आगम-साहित्य में संलेखना-संथारा के संदर्भ-स्थल (2)	-डॉ.पवनकुमार जैन	46
अध्यात्म-	सम्पन्नता का रहस्य	-श्री कन्हैयालाल लोढ़ा	40
आ.पद रजतवर्ष-	गुणनिधान-गुरुहीरा	-श्री नौरतनमल मेहता	53
जीवन-व्यवहार-	सुख, दुःख और शान्ति	-आचार्यश्री विजयरत्नसुन्दरसूरिजी	57
तत्त्व-ज्ञान-	आओ मिलकर ज्ञान बढ़ाएँ (95)	-श्री धर्मचन्द जैन	58
काव्य-	वीर प्रभु की अंतिम वाणी (15)	-मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा.	62
	अनुप्रेक्षा बावनी	-श्रद्धेय श्री जितेन्द्रमुनिजी म.सा.	80
नारी-स्तम्भ -	तप और भेदविज्ञान	-डॉ. दिलीप धींग	66
धारावाहिक-	लग्न की वेला (15)	-आचार्यश्री उमेशमुनिजी 'अणु'	72
युवा-स्तम्भ -	जन्म मरण की जड़ें : चार कषाय	-श्री रमेशचन्द्र कनेरिया	77
अंग्रेजी-स्तम्भ-	The Eternal Message of Lord Mahavira	*-Sh. Dulichand Jain*	85
स्वास्थ्य-विज्ञान -	स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ क्यों विश्वसनीय?	-डॉ. चंचलमल चोरडिया	87
बाल-स्तम्भ -	जैसी करनी, वैसी भरनी	-श्रीमती गिरिजा 'सुधा'	93
चिन्तन/विचार-	संथारा : अमरता की साधना	-डॉ. धर्मचन्द जैन	13
	जय गुरु हीरा	-श्री धीरज जैन	18
	विचार-सरिता	-सुश्री निधि जैन	22
	जिज्ञासा-समाधान	-संकलित	39
	आचार्य श्री का स्वाध्याय पर जोर क्यों था?	-श्री आर. प्रसन्नचन्द चोरड़िया	56
	संलेखना की विधि	-श्री नवरतन डागा	76
	रात्रिभोजन और प्रकाश	-श्री एन. महावीरचन्द छाजेड़	96
	सन्तवाणी	-संकलित	122
कविता/गीत-	राग रंग से मुखड़ा मोड़ो	-श्री मोहन कोठारी 'विनर'	26
	माँ-बाप के उपकार	-श्रीमती कमला सुराणा	61
	संयम शिरोमणि	-श्री कोमल जैन	84
	चार गतियों के दुःखों से भीति क्यों?	-श्री देवेन्द्रनाथ मोदी	101
युवक-परिषद्-	आओ स्वाध्याय करें	-संकलित	97
साहित्य-समीक्षा-	नूतन साहित्य	-डॉ. श्वेता जैन	102
समाचार विविधा-	समाचार-संकलन	-संकलित	106
	साभार-प्राप्ति-स्वीकार	-संकलित	123

सम्पादकीय

न्यूयार्क में पर्युषण पर्व

❖ डॉ. धर्मचन्द जैन

इस वर्ष पर्युषण पर्व की साधना हेतु मुझे जैन सेण्टर ऑफ अमेरिका के आमन्त्रण पर न्यूयार्क जाने का अवसर प्राप्त हुआ। जैन सेण्टर ऑफ अमेरिका की यह विशेषता है कि यहाँ एक ही चार मंजिला भवन में सभी धार्मिक गतिविधियाँ सम्पन्न होती हैं। श्वेताम्बर मंदिर, दिगम्बर मंदिर, स्थानक एवं श्रीमद् राजचन्द्र ध्यान केन्द्र सब इसी भवन में अलग-अलग मंजिलों पर निर्मित हैं। पर्युषण में 10 सितम्बर से गुजराती भाषा में श्वेताम्बर मंदिर आम्नाय के अनुसार भक्ति एवं प्रवचन के कार्यक्रम गुजरात स्थित तपोवन से आये दो स्वाध्यायियों ने सम्पन्न करवाए। हिन्दी भाषियों के लिए स्थानक परम्परा के अनुसार 11 सितम्बर से पर्युषण पर्व प्रारम्भ हुए तथा संवत्सरी 18 सितम्बर को मान्य की गई।

न्यूयार्क एवं न्यूजर्सी दो अलग-अलग राज्य हैं, जिन्हें हडसन नदी जोड़ती है। न्यूयार्क में स्थित जैन सेण्टर में न्यूजर्सी से भी श्रावक-श्राविका उत्साहपूर्वक बराबर उपस्थित होते थे। 30-40 मील से चलकर आने में भी उन्हें कोई आलस्य नहीं था। इतनी दूर से धर्म-स्थल पर पहुँचना उनकी धर्म के प्रति आस्था, लगन एवं निष्ठा का सूचक है।

न्यूयार्क एवं न्यूजर्सी राज्यों में राजस्थान एवं गुजरात के बहुत लोग हैं, जिनमें अधिकतर जवाहरात के कार्य से जुड़े हैं। डॉक्टर, इंजीनियर, सी.ए. आदि भी हैं। सबमें धर्म के प्रति रुचि है। उनमें परस्पर मिलना-जुलना है, अतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप अभी पर्याप्त रूप से सुरक्षित है। खान-पान भारतीय ही बना हुआ है। वहाँ भारतीय स्टोर हैं, अलग से बाजार भी हैं, जहाँ भारतीय लोगों के लिए दालें, फल, हरी सब्जियाँ, घी, तेल आदि सब उपलब्ध हैं। पंजाब एवं दक्षिण भारत के भी काफी लोग नागरिकता लेकर अमेरिकी बन गए हैं। विगत पचास वर्षों में राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि से काफी लोग अमेरिका में रहने लगे हैं। उच्च अध्ययन के लिए भी यहाँ छात्रों का आना बढ़ रहा है, उनमें से कई छात्र यहाँ ही जॉब कर लेते हैं। प्रारम्भ में यहाँ जॉब करने वालों को ग्रीन कार्ड मिलता है तथा बाद में अमेरिकी नागरिकता प्राप्त हो जाती है। अमेरिका में अभी तो भारतीय संस्कृति जीवित है, किन्तु आगामी पचास वर्षों में क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। जो बच्चे वहाँ पले-बढ़े हैं उनको हिन्दी कम समझ में आती है, अंग्रेजी बिल्कुल अमेरिकी टोन में बोलते हैं। उनमें से किन्हीं-किन्हीं को तो धार्मिक अध्ययन एवं संस्कारों का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, किन्तु अधिकतर उस संगति एवं संस्कारों से वंचित हैं। उनके लिए

साप्ताहिक पाठशालाओं की आवश्यकता है। वहाँ पर ईसाइयों के बाद यहूदियों की बड़ी संख्या है। व्यापार आदि पर भी उनका कब्जा है। उन्होंने वहाँ अपनी सांस्कृतिक परम्परा को जीवित रखा है। उनके धार्मिक पर्वों पर अमेरिका में अवकाश रहता है। अब जो जैन परिवार अमेरिका आदि देशों में पर्याप्त संख्या में बसते हैं वे जैनधर्म एवं उसकी संस्कृति को स्वयं जीवित रखकर उसकी महत्ता से अमेरिकियों को परिचित कराते हुए प्रचार-प्रसार में सहभागी बन सकते हैं, किन्तु उससे पूर्व आवश्यकता है भावी पीढ़ी को जैन संस्कृति में रंगने की, उसे संस्कारित करने की।

अमेरिका का भू भाग भारत से तिगुना है तथा जनसंख्या भारत से तिहाई है, अतः वहाँ भूसम्पदा भारत की तुलना में प्रतिव्यक्ति नौ गुनी है। सड़के साफ-सुथरी है, मरम्मत समय पर होती रहती है। यातायात के नियमों का सख्ती से पालन होता है। यहाँ मजदूरी महँगी है, एक कार्यकर्मी को एक घण्टे के कम से कम 11 डालर मिलते हैं। अतः कोई सात घण्टे कार्य करता है तो उसे 77-80 डालर मिल जाते हैं, जिससे वह अपना जीवन यापन कर लेता है। एक डॉलर अभी 66 रुपये का है तो 80 डालर 5280 रुपये के होते हैं। एक दिन की यह आय सामान्य जीवन गुजारने के लिए वहाँ पर्याप्त है। डॉलर की वेल्यू खूब है, कोई पाँच-दस डॉलर में अपना पेट भर सकता है। श्रम का मूल्य अधिक होने से यहाँ पर महिलाओं द्वारा घर का कार्य प्रायः स्वयं करने के कारण शरीर में चुस्ती-फुर्ती रहती है। वे ड्राइविंग करने, ऑफिस संभालने एवं बाजार के कार्य करने में भी दक्ष हैं।

अमेरिका में बेहतर जीवनस्तर (Better Living Standard) है, सुविधाएँ अधिक हैं, व्यवस्था के लिए कानून भी हैं, तथापि मानव के मन में शान्ति एवं प्रेम की कमी है। आध्यात्मिक चिन्तन एवं ध्यान आदि के अभ्यास की आवश्यकता है। यह आवश्यकता भारत में भी है एवं अन्यत्र भी सब जगह है।

अमेरिका के न्यूयार्क, शिकागो, सेन फ्रांसिस्को आदि अनेक स्थानों पर पर्युषण पर्व के अवसर पर भारतीय विद्वानों, स्वाध्यायियों को बुलाया जाता है। श्री माणकमुनिजी, तेरापंथ की समणी आदि का सुयोग वहाँ सदैव रहता है।

'जैन सेण्टर ऑफ अमेरिका' में पर्युषण में प्रतिदिन प्रातः अन्तगडसूत्र का वाचन एवं विवेचन होता था, जिसमें संख्या कम ही रहती थी। सायंकालीन प्रतिक्रमण श्राविकारत्न श्रीमती श्वेताजी कोठारी अत्यन्त मधुर स्वरों में स्पष्ट उच्चारण के साथ कराती थी। मोनिकाजी बैद, सविताजी हीरावत आदि दो-तीन श्राविकाएँ भी प्रतिक्रमण जानती हैं। पुरुषों में इसका लगभग अभाव है। प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि 8.15 बजे से प्रवचन का कार्यक्रम रहता था, जो प्रायः 10 बजे तक चलता था। न्यूयार्क एवं न्यूजर्सी में रहने वाले

100-125 श्रावक-श्राविकाओं की जिज्ञासुभाव से उपस्थिति रहती। प्रत्येक बात को बड़े ध्यान से सुनते थे। आठ दिनों में प्रथम दिन **'धर्म है मंगलकारी'** विषय पर व्याख्यान हुआ, जिसमें इस बात पर बल दिया गया कि धर्म हमारे जीवन को उन्नत एवं बेहतर बनाता है। वह हमारी सोच एवं आचरण को बदलकर हमारे जीवन को मूल्यवान बनाता है। जिस प्रकार हीरे को तराशने पर उसकी वेल्यू बढ़ जाती है, उसी प्रकार धर्म हमारे जीवन को तराशता है, जिससे हमारे जीवन की वेल्यू बढ़ जाती है। धर्म से मूल्यवत्ता में वृद्धि (Value-addition) होती है। धार्मिक आस्था के विभिन्न स्तर भी प्रस्तुत किए गए। दूसरे दिन **सम्यग्दर्शन** पर चर्चा की गई, जिसमें प्रेय की अपेक्षा श्रेय को महत्त्व देने की दृष्टि के विकास पर बल दिया गया। प्रायः हम मिथ्यात्व में जीते हैं। इसलिए पराधीनता को ही स्वाधीनता समझते हैं तथा स्वाधीनता में नीरसता का अनुभव करते हैं। जीवन एवं जगत् के सत्य का दर्शन ही सम्यग्दर्शन है। आचारांगसूत्र में 'सच्चम्मि धितिं कुव्वहा' आदि वाक्य सत्यनिष्ठ बनने को प्रेरित करते हैं।

तृतीय दिन रविवार का दिन होने से सामूहिक-सामायिक दिवस था, जिसमें गुजराती बन्धु भी उपस्थित थे। अतः अन्तगडसूत्र का वाचन सीमित रखकर **'कर्मसिद्धान्त'** की महत्ता एवं अवधारणा का विवेचन किया गया। संयोजक श्री सुनीलजी डागा द्वारा सुझाव दिया गया कि रात्रि में भी 'कर्मसिद्धान्त' को ही जारी रखा जाए, अतः दोनों सत्र कर्मसिद्धान्त के विवेचन एवं जीवन में उसकी उपयोगिता पर केन्द्रित रहे। इन सत्रों में यह प्रतिपादन किया गया कि अपने दुःख का कारण दूसरों को समझना भूल है। 'अत्तकडे दुक्खे नो परकडे' दुःख आत्मकृत है, परकृत नहीं। जैन धर्म पुरुषार्थवादी है। व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करता है। वह अपना भाग्य बदल भी सकता है। वह अपने भावों एवं मन-वचन-काया की जैसी प्रवृत्ति करता है, वैसा ही कर्म बांधता है। वह अपने शुभ भावों के द्वारा कर्मों का संवर भी कर सकता है तथा पूर्व में बाँधे गए कर्मों का क्षय भी कर सकता है। वर्तमान पुरुषार्थ के द्वारा पूर्व में बांधे गए कर्मों की स्थिति (अवधि) एवं तीव्रता को घटाया जा सकता है। इसलिए करना है तो सुकृत करें। मन से सत् चिन्तन करें, सबका भला सोचें, किसी के प्रति मन में ईर्ष्या एवं द्वेष न लाएं। वचन से मधुर एवं हितकर बोलें। कटु शब्दों का प्रयोग करने से बचें। काया से आलस्य त्याग कर उसे सत्कार्यों में क्रियाशील रखें। जो कुछ मिला है उस पर स्वामित्व न रख कर उसका सदुपयोग करें।

चतुर्थ दिवस की रात्रि में **'सुख की पगडण्डियाँ'** विषय पर चिन्तन प्रस्तुत करते हुए पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में भी सुखी रहने के उपायों की चर्चा की गई- 1. प्रत्येक परिस्थिति हमारे लिए कल्याणकारी है, उसका सदुपयोग करने की आवश्यकता है। 2. सुख

की परिस्थिति हो या दुःख की, वह स्थायी नहीं है, बदल जाने वाली है। 3. किसी से अपेक्षा रखने पर वह पूर्ण नहीं होती है तो दुःख होता है, अतः अपेक्षाओं को घटाना चाहिए। 4. अधिकार की मांग सबको रहती है, किन्तु अधिकारों की मांग जहाँ द्वन्द्व उत्पन्न करती है वहाँ कर्त्तव्य का पालन द्वन्द्व को दूर करता है। 5. भूत एवं भविष्य की चिन्ताओं को तिलांजलि देकर वर्तमान का सदुपयोग करना चाहिए। पापी से पापी व्यक्ति भी वर्तमान का सदुपयोग कर महान् सुखी बन सकता है। "गते शोको न कर्त्तव्यो, भविष्यं नैव चिन्तयेत्। वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः" बुद्धिमान लोग बीती हुई बात का शोक नहीं करते, भविष्य की व्यर्थ चिन्ता नहीं करते, वर्तमान को सुधारते हुए कार्य करते हैं। 6. चिन्ता नहीं चिन्तन करें। चिन्ता से समाधान नहीं मिलता, चिन्तन से समाधान मिलता है। चिन्तन भी दो प्रकार के होते हैं, उनमें व्यर्थ चिन्तन को छोड़कर हितकारी सार्थक चिन्तन को अपनाना चाहिये। 7. जो इच्छाएँ दुःख को जन्म देती हैं, उनको पाले रखना उचित नहीं। इच्छाओं या कामनाओं को नियन्त्रित करके ही सुखी हुआ जा सकता है। 8. करने में सावधान एवं होने में प्रसन्न रहें। प्रवृत्ति सोच विचारकर की जानी चाहिए, किन्तु उसका फल प्राप्त होने पर दुःखी होने की आवश्यकता नहीं। उसके फल में प्रसन्न रहने से प्रसन्न रहना आता है। 9. बाह्य पदार्थों एवं वस्तुओं की पराधीनता से बचना है तो उनमें सुख समझने की मान्यता से किनारा करना होगा। भीतर से सुख के स्रोत का अनुभव करना होगा, जो काम, क्रोधादि विकारों पर नियन्त्रण से ही सम्भव है। संसार में सब कुछ अनित्य है। सबका संयोग अनित्य है, एक दिन नाश को प्राप्त होने वाला है, अतः उनके नित्य संयोग की अभिलाषा उपयुक्त नहीं है। यह एक सत्य है। सत्य का आदर करने पर ही हम सही दिशा की ओर बढ़कर दुःखमुक्त हो सकते हैं। प्रसिद्ध डॉ. हरपावत साहब ने प्रतिक्रिया करते हुए कहा- "आपने पहले दिन 'जीवन में धर्म का महत्त्व' समझाया था, उसका आज क्रियात्मक रूप प्रस्तुत किया, जो मुझे बहुत अच्छा लगा।"

पाँचवें दिन **'सोच में बदलाव'** विषय पर चर्चा की गई। सोच में बदलाव के लिए आवश्यक है कि हम अपने विचारों पर नज़र रखें, क्योंकि हमारे विचार ही शब्दों में अभिव्यक्त होते हैं तथा आचरण में उतरते हैं। वह आचरण ही हमारी आदत का निर्माण करता है तथा आदतों से ही चरित्र निर्मित होता है एवं वह चरित्र ही भाग्य का निर्माण करता है। इसलिए आदतों, चरित्र एवं भाग्य को बदलने के लिए सोच को बदलना होगा। सोच बदलकर हम अपनी दिशा एवं प्रयत्न में बदलाव ला सकते हैं। मान्यता भेद के कारण मन-भेद न हो, रुचि भेद के कारण कलह न हो, आग्रह का त्याग कर दूसरे के विचारों एवं भावनाओं को भी आदर देना सीखें। प्रभु महावीर का अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद सिद्धान्त

हमें सही ढंग से सोचने के लिए प्रेरित करता है, जिसमें हम अपने साथ दूसरे के विचारों एवं भावनाओं को भी जानने एवं समझने का प्रयत्न करते हैं। मनुष्य की स्वार्थ भावना भी परस्पर लड़ाई-झगड़े एवं द्वन्द्व का कारण बनती है, अतः प्रेम से जीने के लिए स्वार्थ भावना को सीमित करने की आवश्यकता है। कभी हमें सच्चाई का बोध नहीं होता तो भी समस्या उत्पन्न होती है, इसलिए कलह एवं द्वन्द्व को उत्पन्न करने से पूर्व वस्तुस्थिति का ज्ञान आवश्यक है। जीवन ताश के पत्तों की तरह है। ताश के पत्ते जैसे मिल जाते हैं, उन्हीं से व्यक्ति को अच्छी बाजी खेलनी होती है। इस प्रकार जीवन में जैसे परिवारजन मिल गए या परिस्थितियाँ मिल गईं, उनको स्वीकार करके ही जीवन को उत्तम रीति से जीना है।

षष्ठ दिवस पर गुजराती भाषा में मन्दिरमार्गी आम्नाय के अनुसार पर्युषणाराधना कराने तपोवन, गुजरात से आए दो स्वाध्यायियों के साथ सामूहिक कार्यक्रम रखा गया, जिसमें भक्ति गीतों के पश्चात् भावाभिव्यक्ति हेतु आधा घण्टे का समय दिया गया। इसमें **आगम-साहित्य एवं अन्य विशाल जैन साहित्य के स्वाध्याय की महत्ता** का प्रतिपादन करते हुए स्वाध्याय हेतु कतिपय आगमों एवं पुस्तकों का नामोल्लेख भी किया गया। स्वाध्याय से ज्ञानावरण कर्म का तो क्षय होता है, आयुकर्म को छोड़कर सभी सात कर्मों की स्थिति एवं अनुभाग में भी शिथिलता आती है। स्वाध्याय के वाचना आदि पाँचों प्रकार कर्म-निर्जरा के महान् साधन हैं। स्वाध्याय एवं ध्यान ये दोनों जीवन को बदलने वाली महत्त्वपूर्ण साधनाएँ हैं।

सप्तम दिवस को **'जैन इतिहास'** पर प्रकाश डालते हुए जैन धर्म की प्राचीनता का प्रतिपादन करने के साथ प्रभु ऋषभदेव से लेकर, तीर्थंकर शान्तिनाथ, अरिष्टनेमी, पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी के जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रस्तुत किया गया, साथ ही पश्चात्वर्ती आचार्यों की भी किंचित् चर्चा की गई। इतिहास के सम्बन्ध में अनेक जिज्ञासाएँ थीं, अतः अन्त में उनका समाधान किया गया। प्रतिदिन ही व्याख्यान के अन्त में चर्चा के लिए 10-15 मिनट निर्धारित थे, जिससे प्रतिपादित विषय के सम्बन्ध में अधिक स्पष्टता हो जाती थी।

अष्टम दिवस **'संवत्सरी'** के रूप में मनाया गया। इस दिन सायंकालीन प्रतिक्रमण में 200 से अधिक श्रावक-श्राविकाओं एवं बच्चों ने सोत्साह प्रतिक्रमण किया। प्रतिदिन भी बच्चे एवं बड़े सभी मिलकर एक साथ प्रतिक्रमण करते थे। संवत्सरी के दिन अन्तगडसूत्र वाचन के अनन्तर उपवास, पौषध, प्रतिक्रमण, आलोयणा एवं क्षमायाचना- इन पाँच कार्यों पर प्रकाश डाला गया। दिन में 'आलोयणा' सुनने के लिए गुजराती बन्धु भी उपस्थित थे। प्रातः अन्तगडदसासूत्र के पश्चात् पर्युषण की महत्ता, सुप्रत्याख्यान-दुष्प्रत्याख्यान, तप, संथारा, समता आदि विषय विवेचित किए गए। **(शेषांश पृष्ठ 92 पर)**

अमृत-चिन्तन

आगम-वाणी

यावज्जीवन संथारा भी आगार सहित सम्भव

प्रायः यह धारणा है कि यावज्जीवन के लिए संलेखना-संथारा का पाठ बोलने के पश्चात् संथारे में आगार नहीं रखा जाता है। वह संथारा जीवनभर के लिए होता है, किन्तु अंतगडदसासूत्र में सेठ सुदर्शन श्रावक ने यावज्जीवन के लिए सर्व प्राणातिपात आदि का त्याग एवं अशनादि चारों आहारों का त्याग करके भी उस संथारे में यह पाठ बोला था कि यदि मैं अर्जुनमाली के द्वारा उत्पन्न उपसर्ग (कष्टप्रद घटना) से मुक्त हो जाऊँगा तो इस संथारे को पार लूँगा, यदि मुक्त नहीं हुआ तो उस प्रत्याख्यान का निर्वाह करूँगा। अंतगडदसासूत्र में प्राप्त पाठ इस प्रकार है-

पुव्विं च णं मए भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए-3 थूलए मुसावाए, थूलए अदिण्णादाणे, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छा परिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं मुसावायं, सव्वं अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

सूत्र 12-जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।-अंतगडदसासुत्त, वर्ग 6, अध्ययन 3

अर्थ- मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूलप्राणातिपात का आजीवन त्याग (प्रत्याख्यान) किया, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान का त्याग किया, स्वदार सन्तोष और इच्छा परिमाण रूप स्थूल परिग्रह विरमण व्रत जीवन-भर के लिये ग्रहण किया, अब उन्हीं भगवान महावीर स्वामी की साक्षी से सम्पूर्ण प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और सम्पूर्ण-परिग्रह का सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। (क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य तक 18 पापों का भी सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ।) सब प्रकार का अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ।

यदि मैं इस उपसर्ग (उपस्थित विपत्ति) से बच गया तो मुझे इस त्याग का पारणा करना कल्पता है। पर यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊँ, न बचूँ तो मुझे इस प्रकार का सम्पूर्ण त्याग यावज्जीवन है। ऐसा निश्चय करके उन सुदर्शन सेठ ने उपर्युक्त प्रकार से सागारी पडिमा अनशन व्रत धारण कर लिया।

विवेचन–अंतगडदसासूत्र के अन्तर्गत उल्लेख आता है कि अर्जुनमाली यक्ष से आविष्ट होकर प्रतिदिन 6 पुरुषों एवं 1 स्त्री की हत्या कर रहा था। उन्हीं दिनों प्रभु महावीर का राजगृही नगरी के गुणशीलक उद्यान में पदार्पण हुआ। गुणशीलक उद्यान में जाने का मार्ग उसी पुष्पाराम से होकर जाता था, जहाँ वह अर्जुनमाली हिंसा का ताण्डव कर रहा था। अतः सुदर्शन श्रावक को उनके माता-पिता ने प्रभु दर्शनार्थ जाने से बहुत रोका, किन्तु सुदर्शन श्रावक श्रद्धा-भक्ति की पराकाष्ठा के कारण उस खतरे का सामना करते हुए भी प्रभु दर्शन के लिए निकल पड़ा एवं पुष्पाराम में जाकर सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन एवं सर्व परिग्रह का पुनः प्रभु महावीर की साक्षी से यावज्जीवन त्याग करता है, साथ ही सर्व अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम इन चतुर्विध आहारों का जीवन भर के लिए त्याग कर देता है। यह करते हुए भी वह संकल्प करता है कि यदि मैं इस उपसर्ग (विपत्ति) से मुक्त हो जाऊँगा तो इस त्याग को पार लूँगा, ऐसा चिन्तन कर सागार प्रतिमा अंगीकार करता है। सुदर्शन सेठ के द्वारा सागार प्रतिमा अंगीकार करना इस तथ्य को पुष्ट करता है कि जावज्जीवं(यावज्जीवन) के पाठ से गृहीत संथारे में भी आगार रखे जा सकते हैं। आज जो संथारे को लेकर विमर्श चल रहा है, उसमें यह बिन्दु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि विकट स्थिति में यावज्जीवन संथारा ग्रहण करके भी उसमें आगार रखे जा सकते हैं। यावज्जीवन के पाठ के औचित्य का प्रश्न उठे तो कहा जा सकता है कि यदि वह सुदर्शन सेठ कदाचित् मृत्यु के मुख में चला जाता तो यावज्जीवन का त्याग आवश्यक था। यहाँ यह ध्यातव्य है कि विशेष परिस्थिति में गृहीत संथारे में ही आगार रखा जा सकता है, सामान्य परिस्थिति में तो उसका यावज्जीवन पालन करना अभीष्ट है।**- सम्पादक**

संथारा : अमरता की साधना

वस्तुतः संथारा की साधना अमर बनने की साधना है। यह मृत्यु से अमरत्व की ओर जाने की साधना है। अमरता वह है जहाँ जन्म-मरण की शृंखला समाप्त हो जाती है। उपनिषद् में भी इस अमरता की चाहना की गई है तो जैन-दर्शन में भी सिद्धों को अजर-अमर-अविनाशी कहा गया है। 'अब हम अमर भए न मरेंगे' आदि भजन भी इसका प्रतिपादन करते हैं। उपनिषद् में 'मृत्योर्माऽमृतं गमय' वाक्य इसी का साक्षी है। याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी संवाद में भी मैत्रेयी के द्वारा अमरता की अभिलाषा की जाती है तो नचिकेता के द्वारा भी यम से अमरता की प्राप्ति हेतु याचना की जाती है। मृत्यु का भय न रहना एवं शाश्वत आत्मा का अनुभव करना अमर होना है। संलेखना-संथारा की साधना इस अमरत्व की साधना है।**-डॉ. धर्मचन्द जैन**

विचार-वारिधि

परिग्रह-परिमाण

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

- आवश्यक द्रव्य रखते हुए भी आप परिग्रह पर ममता की गाँठ को ढीली कर के अपरिग्रही बन सकते हैं।
- परिग्रह का बन्धन यदि प्रगाढ़ होगा तो उत्तरोत्तर ईर्ष्या, द्वेष, कलह, लड़ाई-झगड़े, मिलावट, चोरबाजारी और मुकद्दमाबाजी होगी। इसके विपरीत आप परिग्रह पर ममता घटाकर अपने स्वयं के जीवन-निर्वाह के लिये, अपने परिवार और बच्चों के लिये, समाज के हित के लिये, आवश्यकता पूर्ति योग्य अर्थोपार्जन न्याय-नीति से करेंगे तो सभी लोग आपके मित्र होंगे, आपको न राज्य का डर रहेगा और न समाज का ही।
- परिग्रह को सीमित करना, कम करना और परिग्रह के बन्धनों को ढीला करना चाहते हैं तो भोगोपभोग की सामग्री को सीमित करना होगा, अपनी भोगोपभोग की भावना पर अंकुश लगाना होगा, भोगोपभोग की भावना को घटाना होगा।
- इच्छा-परिमाण श्रावक के मूलव्रतों में परिगणित किया गया है। इच्छा का परिमाण नहीं किया जाएगा और कामना बढ़ती रहेगी तो प्राणातिपात और झूठ बढ़ेगा। अदत्त ग्रहण में भी प्रवृत्ति होगी। कुशील को बढ़ाने में भी परिग्रह कारणभूत होगा। इस प्रकार असीमित इच्छा सभी पापों और अनेक अनर्थों की कारण है।
- परिग्रह की एक सीमा कर, परिग्रह का परिमाण कर अपरिग्रही बनने के साथ-साथ भोगोपभोग की सामग्री को यथाशक्ति सीमित करते रहना, भोगोपभोग की इच्छा पर नियन्त्रण करना परमावश्यक है। भोगोपभोग की इच्छा जब तक शान्त नहीं होती, तब तक अपरिग्रहत्व की आराधना करना गृहस्थ के लिये संभव नहीं है।
- परिग्रह का परिमाण कर यदि आप परिग्रह को कम करना चाहते हैं, तो अपरिग्रह की भावना के साथ उपभोग-परिभोग को, भोगोपभोग की सामग्री को घटाने की आवश्यकता है। उपभोग-परिभोग को घटाने के साथ ही परिग्रह की आवश्यकता स्वतः कम हो जायेगी और परिग्रह-संचय के लिये होने वाला पाप भी कम हो जायेगा।
- जिस प्रकार भोगोपभोग परिग्रह को बढ़ाने के साधन हैं, उसी प्रकार दिखावा या आडम्बर भी परिग्रह को बढ़ाने का साधन है।
- केवल बाहरी वस्तु का परिमाण करने से काम नहीं चलता। यह तो इच्छाओं को सीमित करने की एक साधना मात्र है। साधना क्षेत्र में बाह्य और आन्तरिक परिसीमन की नितान्त आवश्यकता है तथा दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

-'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' ग्रन्थ से साभार

प्रेरक-सन्देश

आचार्यप्रवर श्री हीरा का संदेश : जीवन की उन्नति के लिए निर्व्यसनी सामायिक संघ

पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के आचार्य पदारोहण का यह रजतवर्ष चल रहा है। हमारे निवेदन पर उन्होंने जीवन के उन्नयन के लिए निर्व्यसनतापूर्वक सामायिक साधना के सम्बन्ध में हिण्डौन चातुर्मास में जो भाव अभिव्यक्त किए हैं, उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। **-सम्पादक**

आचार्य भगवंत श्री हस्तीमलजी म.सा. ने अपनी दिनचर्या के 24 घण्टों में से 2 घड़ी का समय मानसिक बल व आत्मशांति के लिये निकालने का अनमोल सूत्र जैन धर्मावलम्बियों को प्रदान कर समभाव रूप रसायन दिया। फलस्वरूप यत्र-तत्र सर्वत्र धर्मस्थान में सामायिक साधना करने वालों की बहुलता वाला दृश्य आज भी परिलक्षित हो रहा है। ''गुरु हस्ती के दो फरमान : सामायिक स्वाध्याय महान्।'' रत्न संघ का हर भक्त आज भी कहीं भी दर्शनार्थ जाने पर अपनी इस पहचान को अक्षुण्ण तो बनाये रखता ही है; साथ ही सामायिक एक पवित्र साधनापरक अनुष्ठान है, ऐसा आदर्श प्रस्तुत कर न करने वालों को निःसंकोच जुड़ने के लिये प्रेरित कर रहा है।

जिनागमों में सामायिक को षट् आवश्यकों में पहला आवश्यक बताया है। आचार्य हरिभद्र के शब्दों में **सामायिकं च मोक्षांगं**। सामायिक मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख अंग है। ग्यारह अंगों के ज्ञान में- **सामाइयमाइयाहिं एक्कारस अंगाइं।** सर्वप्रथम सामायिक का ज्ञान करना आवश्यक है, ऐसा बताया है। अंतकृद्दशा सूत्र में वर्णन आया है- मोक्षगामी सभी 90 आत्माओं ने दीक्षित होते ही सर्वप्रथम सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

श्रावक के बारह व्रतों में शिक्षा व्रतों के अन्तर्गत पहला शिक्षाव्रत 'सामायिक' है- **निरवद्यमिदं ज्ञेयमेकान्तेनैव तत्त्वत:** के अनुसार सामायिक एकान्त निरवद्य पाप रहित प्रवृत्ति है, जो श्रावक के लिये आचरणीय है। संत-भगवंत तो आदि से अंत तक सामायिक की साधना से आत्मभावों में स्थिर रहकर समता को सिद्ध करते रहते हैं। राग-द्वेष रहित उनका जीवन सामायिक वाला है। भगवती सूत्र इसकी पुष्टि कर रहा है- **''आया खलु सामाइए, आया खलु सामाइयस्स पओयणे।''** सामायिक की साधना के बिना आज

तक एक भी जीव मुक्ति को प्राप्त नहीं हुआ है। सभी साधक सामायिक साधना करके ही मोक्ष में गए हैं एवं भविष्य में भी सामायिक साधना वाले ही मोक्ष का वरण करेंगे। आगम के शब्दों में-

जे के वि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति जे गमिस्संति।
ते सव्वे सामाइयप्पभावेणं मुणेअव्वं।।

अब प्रश्न उठता है- सामायिक साधना किस तरह से की जाय? इस पर केवली भगवान फरमा रहे हैं-

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं।।

सामायिक की मौलिक भावना के अनुसार हमारा आचरण एवं व्यवहार हो। सम्यक् पद्धति से की गई पूनिया श्रावक जी की शुद्ध सामायिक को स्वयं श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अनमोल बताया। सामायिक द्वादशांगी वाणी का सार है- इसकी आराधना मूल पाठों के रहस्य को समझते हुए करोगे, तो आंतरिक अभिरुचि जागृत होगी एवं ऐसा रस आयेगा जो अनुभूति का विषय है। **काले कालं समायरे**- योग्य समय का विचार कर सामायिक करने से चित्त की वृत्तियों का निरोध तो होगा ही मन भी स्थिर रहेगा। मुहूर्त्त का समय भी निकलते जैसा प्रतीत नहीं होगा। स्वाध्याय रसिक इससे सुपरिचित हैं। अभ्यास की निरन्तरता से सब संभव है।

"**आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे।**" आत्मा में रहना ही सामायिक है। इस प्रथम आवश्यक को जानने-समझने व आचरित करने की बुद्धि को प्रगाढ़ कर चाहे साधु हो या संन्यासी, लंगोटधारी हो या जटाधारी, वनवासी हो या श्मशानी, व्यापारी हो या कर्मचारी, मालिक हो या नौकर, पुरुष हो या महिला, बालक हो या वृद्ध, सामायिक के बिना शांति से जी नहीं सकता। घर-परिवार, नौकरी, प्रतिष्ठान, समाज, गाँव, संघ, हर क्षेत्र में आज सहनशील व्यक्ति ही स्थायित्व वाला होने से टिक सकता है और यह सहनशीलता सामायिक साधना से ही आती है, इतनी आवश्यक है यह 'सामायिक'। अतः यह समता भाव की साधना वाली सामायिक सभी के लिये अवश्य करणीय आवश्यक है। यह अपना फर्ज समझकर करने योग्य आत्म-साधना है।

विचार-शुद्धि हेतु स्वाध्याय और आचार-शुद्धि हेतु सामायिक महत्त्वपूर्ण साधना है। आचार्य भगवंत (आचार्य श्री हस्ती) ने अपने समूचे संयमी जीवन में हजारों लोगों को सामायिक साधना से जोड़ा था। जिससे उनका जीवन निर्व्यसनी व प्रामाणिक बनकर समाज के लिये आदर्श बन गया था। पर आज समाज में, संघ में, सम्प्रदाय में निर्व्यसनता व

प्रामाणिकता का स्तर घटता जा रहा है। अतः आचार्य भगवन्त (आचार्य श्री हस्ती) के भक्त कहलाने वालों को **व्यसन मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा करता हुआ सामायिक संघ का सम्मानित सदस्य बनकर नैतिक, चारित्रिक आध्यात्मिक स्तर को स्तरीय बनाने के लिये आह्वान कर रहा हूँ। संघ का प्रत्येक सदस्य, संघ व सहयोगी संस्थाओं के पदाधिकारी गण, कार्यकर्त्तागण सभी सामायिक संघ के उपक्रम को आगे बढ़ाने हेतु दायित्वों का निर्वहन निष्ठा से निभायें। हर पदाधिकारी एक-एक क्षेत्र को संभालने का जिम्मा लेते हुए डोर-टू-डोर दस्तक देकर सामायिक कर्त्ता को जो पूर्णतः निर्व्यसनी हो, सामायिक संघ का सदस्य बनाने का प्रयत्न कर सकता है। इस वर्ष में संघ के सकल घटक शक्ति व उत्साह से सक्रिय होकर इस मिशन को सफल बनाने हेतु संकल्पबद्ध हो जुट जायें।** संघ का हर सदस्य चाहे वे 8 वर्ष के हों या 80 वर्ष के हों, सभी आयु वर्ग वाले सामायिक संघ की सदस्यता ग्रहण को प्राथमिकता दे, ऐसी मेरी भावना है।

''आज सामायिक करने वाले लाखों हैं, करोड़ों की संख्या में सामायिक हो रही है। पर सामायिक संघ का सदस्य वही होगा, जो निर्व्यसनी होगा।'' तात्पर्य यही है कि सामायिक संघ आचारवानों से परिपूर्ण एक विशुद्ध एवं प्रामाणिक संस्था का स्वरूप लिये हो।

सामायिक संघ की सदस्यता ग्रहण करने वालों के लिये आत्मसाक्षी से पालनीय अनिवार्य नियम-

1. हर माह कम से कम 4 सामायिक की साधना अवश्य करना। नियमित व अधिक करने वालों के लिये साधुवाद।
2. सामायिक काल में ज्ञान वृद्धि के लिये कम से कम 20 मिनट का स्वाध्याय करना।
3. प्रातः काल अपने से बड़ों का अभिवादन कर विनय करना, आदर भाव प्रकट करना। विराजमान संत भगवंतों के दर्शन की भावना रखना।
4. सदाचार पालन का एवं प्रामाणिक जीवन जीने का लक्ष्य रखना।
5. तम्बाखू उत्पाद-बीड़ी, सिगरेट, गुटखा आदि का जीवनपर्यन्त त्याग रखना।
6. मादक पदार्थ- भांग, गांजा, चरस, हेरोइन, शराब आदि का जीवनपर्यन्त त्याग रखना।
7. अखाद्य पदार्थ- मांस-मछली-अण्डे आदि का जीवन पर्यन्त त्याग रखना।

8. सभी प्रकार का जुआँ, सट्टा बाजार की तेजी-मंदी, शेयर आदि में राशि लगाकर खेलने का जीवन पर्यन्त त्याग रखना।
9. सेवा-सहकार-वात्सल्य का प्रसंग उपस्थित होने पर अनुकम्पा भाव रखते हुए यथाशक्य सहयोग की प्रबल भावना रखना।

अन्त में जब हम भोजन शुद्ध पसन्द करते हैं। कपड़े शुद्ध पहनकर स्मार्ट दिखना चाह रहे हैं। मकान हर ओर से स्वच्छ हो, ऐसा ख्याल रखते हैं। यानी दुनिया भर की हर वस्तु शुद्ध ही पसन्द करते हैं तो फिर हमारा जीवन प्रामाणिक व आचरण भी शुद्ध हो। अर्थात् यह अपेक्षा है कि व्यसनों से सर्वथा रहित निर्व्यसनी हो। ऐसी स्थिति में आपकी जो भी सामायिक साधना होगी, वह शुद्ध व सम्यक् आनन्द प्रदायक होगी। **अतः जो-जो भी निर्व्यसनी हैं वे सब सामायिक संघ की सदस्यता ग्रहण कर आगत कार्यकर्त्ताओं का उत्साहवर्धन करें। जिनमें आंशिक व्यसन हैं, वे स्वेच्छा से त्यागकर आचार्य भगवंत (आचार्य हस्ती) द्वारा पूर्व में चलाये गए किन्तु सुप्तावस्था को प्राप्त अभियान को बल व गति प्रदान करें। संघ का प्रत्येक सदस्य निर्व्यसनी बन संघ की गौरव गरिमा का अनुपम आदर्श स्थापित करने में सहभागी होगा।** ऐसी मंगल मनीषा है।

-प्रेषक : श्री जगदीश जैन 'अध्यापक'

जय गुरु हीरा

गाँव-गाँव, गली-गली, घर-घर में एक ही शोर।
1008 वंदना का हिण्डौनसिटी में, चल रहा है अद्भुत जोर।।

अत्यन्त हर्ष एवं प्रसन्नता का विषय है कि आचार्य भगवन्त 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के अतिशय एवं श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. की पावन प्रेरणा से हिण्डौनसिटी में चातुर्मास शुभारम्भ के एक दिन पूर्व से ही 1008 वंदना महाअभियान अनवरत उत्साह एवं उमंग के साथ प्रवाहमान है। इस अद्वितीय वंदना महाअभियान में सभी आयु वर्ग के बालक-बालिका, युवक-युवतियाँ, श्रावक-श्राविकाएँ तथा जैनेतर भाई-बहिन भी बढ़-चढ़कर भाग ले रहे हैं। इस उत्साह का ही परिणाम है कि 29 सितम्बर 2015 तक 60 दिन में 423 बार पूज्य आचार्य भगवंत के श्री चरणों में 1008 सविधि वन्दना की जा चुकी है। उत्साह की एक विशेषता यह भी है कि कुछ श्रावक-श्राविकाओं ने 1008 से आगे बढ़कर 1500, 1700, 2015, 2022, 2500, 3031 वंदना पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में सविधि अर्पित की है।

-धीरज जैन, वन्दना प्रभारी-95290-77502

प्रवचन

संत-समागम से बदलें जीवन

महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा.

सरस व्याख्यानी महान् अध्यवसायी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. द्वारा तक्कोलम्म-चेन्नई में 11 मार्च 2005 को फरमाए इस प्रवचन का आशुलेखन जिनवाणी के सह-सम्पादक श्री नौरतनमल जी मेहता द्वारा किया गया है।**-सम्पादक**

बन्धुओं! संजीवनी समस्त रोगों का नाश करने वाली होती है। अमृत की एक बूंद जीवन दान देने वाली होती है। व्यक्ति अन्तिम श्वासें ले रहा है, उस समय कस्तूरी की एक खुराक दी जाय तो कुछ क्षणों के लिए ही सही उसकी चेतना साकार हो जाती है। तेल आग पर उबल रहा है उसमें बावने चन्दन की चुटकी डाल दी जाय तो उकलता तेल शान्त हो सकता है। मणों दूध है, उसके अन्दर छाछ का एक चुल्लू डाल दिया जाय तो दूध दही के रूप में परिवर्तित हो जाता है। आकीर्णक घोड़ा है उसे चलाना है तो चाबुक मारने की आवश्यकता नहीं, चाबुक देखने के साथ वह आगे बढ़ जायेगा। कुल की शोभा के लिए सैकड़ों-हजारों पुत्रों की आवश्यकता नहीं, एक सुयोग्य पुत्र कुल का गौरव बढ़ा देगा। सैकड़ों-हजारों-लाखों की संख्या में तारे हैं, एक चन्दा प्रकाश कर देगा। संत पुरुषों का समागम प्राप्त हो जाय, वाणी सुनकर व्यक्ति का आचरण बदल जाय तो जीवन-निर्माण हो जायेगा। व्यक्ति-व्यक्ति का जीवन महापुरुषों की चरण सेवा से सँवर सकता है।

श्रेणिक को समझाते-समझाते रानी चेलना का पूरा जीवन चला गया, पर वही राजा अनाथीमुनि के श्री चरणों में उपस्थित हुआ तो दृढ़धर्मी श्रावक बन गया। आप सेवा कर रहे हैं, उपासना कर रहे हैं, इसके लिए आगमकार कह रहे हैं- संत समागम से मिथ्यात्वी सम्यक्त्वी बन सकता है, रागी वैरागी बन सकता है और साधना-मार्ग में आगे भी बढ़ सकता है। संतों का दर्शन-वन्दन समकित दिलाने में सहायक होता है। वैराग्य जगा सकता है और संसार-सागर से पार पहुँचा सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का अधिकार आता है। आपको एक बात पूछूँ- कितने दिन हुए आपको व्याख्यान सुनते हुए?

सभा में से- कई बार सुना है।

ठीक है, सुनते तो आप कई बार हैं, सुनना भी चाहिये। आपको जब व्याख्यान श्रवण का मौका आता है तो सुनते हैं। आपको यदि पूछा जाय कि मृगापुत्र का नाम मृगापुत्र क्यों था तो...?

वह माता के नाम से मृगापुत्र कहलाता था। सुनना ज्ञान वृद्धि का कारण है। सुनकर

समझ बढ़ती है, किन्तु सुनकर जीवन में नहीं उतारा जाय तो फिर आत्मकल्याण होने वाला नहीं है। सुनाने के लिए हम संत ही क्या, आचार्यदेव पधार जायें तब भी जीवन में परिवर्तन नहीं आ सकता। जीवन में परिवर्तन आता है सुनने के साथ उस पर आचरण करने से। भगवान के श्रीचरणों में जाकर भी कई कोरे के कोरे रह जाते हैं। आपने दोहा सुना होगा-

चार कोस का मांडला, बहे वाणी का धोरा।
भारी कर्मा जीवड़ा, बैठा रइग्या कोरा।।

भगवान के श्री चरणों में जाकर वाणी सुनने पर भी कइयों का जीवन अधूरा रह गया, उनमें परिवर्तन नहीं आया। आचार्य भगवन्त फरमाते हैं- "जिनकी वाणी एक योजन तक गुंजायमान हो रही है और जिनकी वाणी खाली नहीं जाती तो हमारी बात का असर कितना हो सकता है?" आज गाँव-गाँव में श्रावक-श्राविकाएँ एक ही बात कहते हैं, पधारो और विराजो।

कई लोग ऐसे तेजस्वी-यशस्वी होते हैं जो स्वयं के नाम से जाने जाते हैं, कई माता-पिता के नाम से पहिचाने जाते हैं, कई धर्माचार्य धर्मगुरु के नाम से प्रसिद्धि पाते हैं। इस परम्परा में आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज ने चौदह संतों के साथ भोपालगढ़ में क्रियोद्धार किया। आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के गुरु महाराज आचार्य श्री गुमानचन्द्र जी महाराज भी कहते- "भाई! थारे नाम सु परम्परा री पहचान है।"

मृगापुत्र महल के झरोखे में बैठे हुए मृदंग बजा रहे थे, गीत गाये जा रहे थे। झरोखे में बैठे मृगापुत्र की रास्ते में जाते हुए मुनिराज पर नज़र पड़ती है। आपने कितनी बार संत-मुनिराजों को देखा है? आप भाग्यशाली हैं, आपको एक-दो बार नहीं अनेक बार संत-समागम का सुयोग मिला है। ज्यादा सुयोग से ज्यादा लाभ हो ही जायेगा, ऐसी बात भी नहीं है। कभी-कभी संतों का एक वचन लग जाय तो बेड़ा पार हो जाता है।

मृगापुत्र का मुनिराज को देखकर चिन्तन चलता है कि ऐसा रूप मैंने कहीं देखा है। चिन्तन की धारा में उसे जातिस्मरण ज्ञान हो जाता है। आपने कई बार मुनिराजों को देखा है किसी को जाति स्मरण ज्ञान हुआ क्या? आपने दर्शन-वन्दन का लाभ लिया, सेवा की, उपासना की, यह सब अच्छी भावना का परिणाम है, पर संत-जीवन देखकर चिन्तन की धारा बदलनी चाहिये, वह शायद नहीं बदली। मृगापुत्र ने दूर से संत-मुनिराज को देखा, चिन्तन चला और जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वे माता के चरणों में पहुँचते हैं और निवेदन करते हैं कि मातुश्री! मुझे दीक्षा लेनी है। संतों के दर्शन से मिथ्यात्वी सम्यक् दृष्टि बन सकता है और भावों की शुद्धता आ जाय तो केवलज्ञान तक हो सकता है।

आपने इलायचीकुमार की कथा सुनी होगी। इलायचीकुमार एक नटनी को नाच करते हुए देखता है। नटनी का रूप-सौन्दर्य देखकर वह मोहित हो जाता है और निर्णय

करता है कि शादी करूँगा तो इसी नटनी के साथ। नीतिकारों का कथन है-

भूखा न देखे झूठा भात, नींद न देखे टूटी खाट।
तिरसा न देखे धोबी घाट, कामी न देखे जात-कुजात।।

भूखा जैसा मिलेगा, खा लेगा। सूखे खाखरे भी भूखे को मीठे लगेंगे। भूख नहीं तो सतरह पकवान सामने होने पर भी नखरे करेगा। भूख है तो जो मिल गया उसी को भगवान का प्रसाद मानकर ग्रहण कर लेगा। भूख कैसी होती है, मुझे कहने की जरूरत नहीं। आपमें से कुछ बोलते भी हैं- **भूख रांड भूंडी, जाय संभाले कूंडी।**

भूख की तरह प्यासा भी नहीं देखता कि मैं कहाँ से पानी पी रहा हूँ। धोबी घाट पर भी प्यासा प्यास बुझाने के लिए तैयार हो जाता है। नींद नहीं देखती खाट टूटी है या ठीक ठाक, आती नींद कहीं आ जायेगी। आपको ए.सी. चाहिये, हवादार स्थान चाहिये, साफ-सुथरी सुसज्जित जगह चाहिये। आपने किसान को देखा होगा। किसान बिना बिछौना खेत में पत्थर का सिराना देकर सो जायेगा और मस्त नींद निकाल लेगा। आपको वैसे स्थान पर सोने को कह दिया जाय तो....? नींद आ रही है तो कहीं भी आ जायेगी। सफर में बैठे-बैठे नींद निकालने वाले हैं या नहीं? प्यास है तो सामने वाला कौनसी जात का है, आप नहीं पूछते, इसीलिए कहावत चल निकली- "पानी न देखे धोबी घाट।"

वासना का भी नशा है। वासना में व्यक्ति आँखें होने पर भी अंधा हो जाता है। वासना का अंधा जात-पांत नहीं देखता, कुल की मर्यादा नहीं समझता। आपने सुना है इलायची कुमार का दृष्टान्त। वह नटनी के पीछे पागल हो रहा था। उसने कह दिया शादी करूँगा तो नटनी के साथ। पिता ने खूब समझाया, दूसरे-दूसरे लोगों ने भी कहा कि तू पिता का इकलौता पुत्र है। तेरे लिए एक से बढ़कर एक सुन्दरियाँ हैं। जहाँ भी तुम्हारी मर्जी है, विवाह हो सकता है। पर इलायचीकुमार वासना में अंधा हो रहा था, उसे नटनी के अलावा किसी के साथ विवाह की बात मंजूर नहीं थी।

पुत्र की इच्छा के आगे पिता के सामने कोई विकल्प नहीं था, अतः पिता नटनी की शादी के लिए प्रस्ताव लेकर नट के पास पहुँचे। नट ने कहा- आप भले ही अपनी कुल-परम्परा छोड़ें, लेकिन मैं अपनी कुल परम्परा की मर्यादा को छोड़ने वाला नहीं। आपकी क्या मर्यादा है? आप जैन हैं तो क्या आप रात में तो नहीं खाते? फाइव स्टार होटलों में भोजन तो नहीं करते?

नट ने कहा- "आपका पुत्र नट बनकर हमारे साथ रहे, अपने करतब दिखाकर राजा को प्रसन्न कर ले तो मैं अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दूँगा।" देखिये, नट जो निम्न जाति का माना जाता है वह अपनी रीति-नीति सामने रखकर सेठ को मर्यादा में बांध

रहा है। आप कौन? आप ओसवाल-भोपाल हैं, भगवान महावीर के उपासक हैं, जैन हैं आपका आचार-विचार-व्यवहार कहाँ जा रहा है, इस पर जरा चिन्तन करना।

नट कह रहा है- ''राजा को प्रसन्न करो, मैं तुम्हें अपनी लड़की दे दूँगा। सेठ का लड़का नट बनकर रहता है, हाथ में डंडा लेकर नाच करता है। वह एक-दो वर्ष तक नहीं, इसी तरह नाच करते हुए बारह वर्ष तक नृत्य कला करता हुआ प्रवीण बनता है। नट राज दरबार में पहुँचता है, नृत्य करता है। नृत्य के करतब दिखाते-दिखाते सोचता है राजा प्रसन्न होकर इनाम देगा। वह राज सम्मान के साथ नटनी पाने की इच्छा से करतब करता जा रहा है। नट के नाच के साथ नट की पुत्री भी ताल मिला रही है। राजा की नज़र नटनी पर पड़ती है। राजा विचार करता है नाच करते-करते नट थक जाय और रस्सी से गिर कर मर जाय तो मुझे नटनी मिल सकती है। यह विकार का नशा है।

राजा की नज़र में विकार है। वह नाच देखता है। एक प्रहर बीता, दूसरा प्रहर बीता, तीसरा प्रहर बीतने पर है। नृत्य करते-करते रात पूरी हो जाती है। नट राजा को प्रसन्न करने के लिए रात भर नाच करता है, उधर राजा के चिन्तन में है कि नाचते-नाचते नट थक जाय, गिर जाय और नटनी मुझे मिल जाय।

नट चाहता था कि राजा प्रसन्न होकर इनाम दें, सम्मान करें। उधर जैन संत अपनी मर्यादा के अनुसार किसी गृहस्थ के घर पहुँचते हैं। मुनिराज को घर पधारने पर सोलह वर्ष की युवती जो सोलह श्रृंगार किए हुए थी, आहार बहरा रही थी, संत की नज़र नीचे थी, उसकी ओर दृष्टि तक नहीं। नट ने नाचते हुए यह दृश्य देखा तो विचार आया- कहाँ तो मैं और कहाँ वे मुनिराज जो श्रृंगारित षोडशी को नज़र उठाकर भी नहीं देख रहे हैं। इलायचीकुमार का चिंतन चलता है और चिन्तन ही चिन्तन में केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है।

संत-समागम-मिथ्यात्व हरण करने वाला है। आप सत्संग-सेवा और संत-समागम का लाभ लेने का लक्ष्य रखें। आपको चाहे कम समय मिल रहा है, फिर भी वह लाभकारी है। आचार्यप्रवर का समागम पाकर साधना-आराधना में आगे बढ़ेंगे यही मंगल मनीषा है।■

विचार-सरिता

सुश्री निधि जैन

यदि जीवन को बनाना है भयरहित, तो जीवन में किसी का मत करो अहित।
यदि जीवन में पाना है ज्ञान, तो स्वयं पर कभी मत करो अभिमान।
यदि जीवन में नहीं होना चाहते लाचार, तो मन में रखो सुविचार।
धैर्य से विपदा टले, जीवन रहे मस्त, क्षोभ कभी ना उपजे, संकट सभी पस्त।

-सुपुत्री श्री सुमेरचन्द जैन, जैन कॉलोनी,
वार्ड नं. 2, खेरली-321606, अलवर (राज.)

प्रवचन

सर्व हितकारी प्रवृत्ति एवं आत्म-विकास

तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा.

तत्त्वचिन्तक श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. द्वारा महावीर भवन, अलवर में 2 एवं 3 सितम्बर, 2015 को फरमाए इस प्रवचन का संकलन-सम्पादन श्री ओमप्रकाशजी गुप्ता, राजस्थान टाइम्स, अलवर द्वारा किया गया है।-**सम्पादक**

जीवन में हर व्यक्ति यही चाहता है कि वह सुखी बना रहे, लेकिन चाहने मात्र से कभी कोई सुखी नहीं हो पाया। सुखी रहने का सबसे अच्छा मार्ग यही है कि अपनी भावना दूसरों के लिए भी हमेशा सर्व हितकारी बनी रहे, लेकिन उसके साथ सर्वहितकारी प्रवृत्ति का होना भी बहुत जरूरी है। दुःख का मूल कारण यही है कि व्यक्ति खुद का हित ज्यादा सोचता है और दूसरों से द्वेष या ईर्ष्या करता रहता है। अपने किसी भाई-बंधु-रिश्तेदार-अड़ौसी-पड़ौसी या मिलने वाले की तरक्की, प्रगति, उसका ऊँचा होता नाम बर्दाश्त नहीं होता। यही तो अशुभ कर्म बंध के कारण बन रहे हैं और हमें इन व्यर्थ के पापों का भान तक नहीं रहता। इसीलिए तो ज्ञानी भगवंतों ने जीवन में सत्संग और स्वाध्याय को बहुत जरूरी बताया है। उससे हमें संसार में कैसा जीना और पग-पग पर अपनी आत्मा की पाप व अशुभ कर्मों से किस प्रकार रक्षा-सुरक्षा करनी, उसका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो पाता है। जब हम सबका भला सोचेंगे और सभी की भलाई के लिए वैसी ही प्रवृत्ति जीवन में अपनाएंगे, तब फिर किसी से राग-द्वेष-ईर्ष्या-नफरत की भावना उत्पन्न नहीं होगी। सीमित व संकीर्ण सोच ही तो ईर्ष्या-द्वेष को बढ़ाती है, लेकिन जब दृष्टिकोण व्यापक और विशाल होता है, यानी संसार के सब जीव सुखी रहें, सबका भला हो, सब स्वस्थ व नीरोगी रहें, सभी में करुणा-दया-अहिंसा-सदाचार-सहिष्णुता के भाव जागृत हों, हर आत्मा का प्रत्येक आत्मा से प्रेम हो, सभी में शांति-सौम्यता-सामंजस्य-समरसता-सद्भावना-सज्जनता-प्रेम-मैत्री-सहकारभाव बढ़े, तब सब जीवों में अपनी तरह आत्मा का दर्शन हो सकेगा। हम किसी का भी बुरा या अहित न सोचकर सभी का भला व मंगल सोचते हुए जब सर्व हितकारी प्रवृत्ति को करने लगेंगे, तब भीतर का प्रकाश जीवन को आलोकित व उन्नतिशील करने में साकार हो जाएगा। अच्छे भाव के साथ अच्छी क्रिया ही तो जीवन में सुकून पैदा करती है। जब दुश्मन और दोस्त में कोई भेद नज़र न आए, तब समझना कि हम सर्व हितकारी प्रवृत्ति के पोषक बन रहे हैं। जिन्दगी का पथ फिर स्वतः ही सुगम होने लगेगा।

उन्होंने कहा कि प्रभु महावीर के कहने से सत्य-अहिंसा धर्म नहीं चला वरन् सत्य-अहिंसा के पथ पर स्वयं महावीर चले, इसलिए वह संदेश आगे बढ़ा है। धर्म तो बहुत शाश्वत है और उसी धर्म के बलबूते महावीर जैसी न जाने कितनी आत्माएँ स्वयं में विलीन हो गईं। चेतना शक्ति व मुक्ति का वह मंत्र आज भी विद्यमान है, आगे भी रहेगा। शुभ गुणों के उपासक हर युग व काल में रहे हैं और धर्म गुणों का ही तो पुंज हैं। धर्म का सीधा सा मतलब है- अच्छी बातों को धारण करना। बुरी से पीछे हटना और अच्छी को आगे बढ़ाने वाले ही तो परमात्मा के सच्चे भक्त व अनुयायी होते हैं। धर्म कभी किसी की बपौती नहीं रहा। जो अपनाए, वही धार्मिक है। गृहस्थी में रहने वाला भी कषायों को सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप के माध्यम से भस्म कर समता व संयम को अंगीकार करके मोक्ष मार्ग पा सकता है। जो भी श्रेष्ठ भावना के साथ, जब वैसी ही श्रेष्ठ-उपकारी-कल्याणकारी-सर्व हितकारी प्रवृत्ति में अग्रसर व अग्रणी बनता है, तब वह भी संसार सागर से मुक्त हुआ है, आगे भी होगा। इसमें स्त्री-पुरुष या जाति-पंथ का कोई भेद नहीं है। जिसकी भी आत्मा जागृत हो पाई है, वही शुद्ध स्वरूप आत्मा के निकट पहुँचकर अपना परलोक सुधार पाया है। हम नाम के पीछे ही जीवन को गंवा बैठते हैं, परन्तु आत्मा का कोई नाम नहीं है। वह तो महज एक चैतन्य स्वरूप है जो सभी में समान रूप से विद्यमान है। जिस तरह से सिद्ध भगवंत या अरिहंत, उनका कोई नाम नहीं होता, वैसे ही आत्मा चाहे हिन्दू या मुसलमान, सिक्ख हो या ईसाई, जैन हो या बौद्ध, सभी में वह समान रूप से विद्यमान है। इस शरीर पर तो पता नहीं कितनी असंख्य बार कौन-कौन से नामों की तख्तियाँ लटक चुकीं, मगर आत्मा का नाम हमेशा शाश्वत रहा है। फिर उस आत्मा के लिए ऐसी करनी कर जाना कि अविनाशी आत्मा आगे जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त होकर परमधाम में विराजित हो सके। हम संकल्प लें कि मैं अच्छा बनूँगा। और अच्छा बनूँगा। सबसे अच्छा बनूँगा। आत्मा-महात्मा-परमात्मा बनने का यही क्रम है।

कभी आपने किसी रंगमंच-थियेटर-स्टेज पर देखा होगा कि दृश्य को लुभावना अथवा रंग-बिरंगा बनाने के लिए लाइट के आगे लाल-हरी-नीली-पीली-काली-सफेद पन्नी लगा दी जाती है, परन्तु सच यह है कि बड़ा बल्ब या हेलोजन लाइट जिससे रोशनी निकल रही है, उसका प्रकाश हमेशा एक जैसा ही रहता है। वह कभी चेंज नहीं होता। कभी सूर्य के आगे जब काले-नीले-सफेद बादल आ जाते हैं, तब सूर्य का प्रकाश हमें दिखाई नहीं देता, मगर हकीकत में बादल कभी सूर्य को छूना तो बहुत दूर, उसके निकट भी नहीं पहुँच पाते। सूर्य बहुत अधिक ऊँचाई पर होता है और बादल निचली सतह पर ही रहते हैं परन्तु वे सूर्य के आ रहे प्रकाश में अवरुद्ध बन जाते हैं। इसी तरह आत्मा के गुण कभी लुप्त

नहीं होते वरन् अपने कषायों की छाया उन्हें अवरुद्ध करने में कारण बन जाती है। क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-विषय-वासना से युक्त कुविचारों का काला रंग आत्मा के प्रकाश में बाधक बना हुआ है। मिथ्यात्व का अंधकार ही तो आत्मा के गुणों के बीच में रुकावट बन जाता है। तभी तो पुद्गलों की आसक्ति से मुक्त होने की राह साधक को दिखाई जाती है। धर्म ऐसा परम उपकारी तत्त्व है जो आत्मा के मध्य तमाम अवरोधों को हटाकर आत्मा के परम तत्त्व में लवलीन करने की ताकत रखता है। आत्मा की साक्षी से और सांसारिक पापों का त्याग करके किए जाने वाला धर्म-आचरण भीतर के अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र को प्रकट करने में पूरी तरह सक्षम है। हम अपने जीवन को टटोलें, अपनी दिनचर्या-गतिविधियों को देखें, भीतर झांकने का प्रयास करें, तभी तो यह मालूम होगा कि हमारी सर्व शक्तिमान आत्मा के बीच कौन-कौन से कारण बाधक व रुकावट बने हुए हैं। उन्हें धर्म-गुरु और शास्त्र का आलम्बन लेकर कम करते या हटाते चले जाएं, यही सबसे श्रेष्ठ सम्यक् साधना का पथ है। ध्यान रहे- आत्मा तो गुणों की अनन्त खान है और उन गुणों को प्राप्त करके हम अपना भव सुधार सकते हैं। आत्मा का ज्ञान भवसागर से पार लगाने में पूर्णतया सक्षम है।

मुनिश्री ने फरमाया कि आत्मा के गुण कभी लुप्त या सुप्त नहीं होते वरन् वे तो हमेशा समान रूप से शाश्वत ही बने रहते हैं। आत्मा पर अपने स्वयं के कर्मों के कारण निर्मित काले बादल ही तो हमारे उज्ज्वल भविष्य में संकट और बाधा पहुँचाते हैं। आत्मा तो सर्व हितकारी व सर्व कल्याणकारी है जो हमें मोक्ष तक दिलाने में सक्षम है, परन्तु जिन बाधक तत्त्वों को हमने ही उसके बीच उत्पन्न कर दिया, उन्हें दूर भी हमें ही करना पड़ेगा। धर्म इसमें सबसे बड़ा सहयोगी है जो बड़ी से बड़ी रुकावट को दूर कर आत्मा के निकट कर सकता है। धर्म कोई बाजार की वस्तु नहीं है, वरन् यह पूर्ण समर्पित होकर गुरु भगवंतों व शास्त्रों से प्राप्त कर जीवन में धारण करना होता है। धर्म का अनुसरण करके ही हम आत्मा में परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। अपने मन-वचन-काया तीनों को जब साधक सदुपयोग करने में लगाता है, तभी तो भावनात्मक सेवा क्रियात्मक होकर उसका सुपरिणाम दे पाती है। साधना-आराधना के क्षेत्र में वीतराग धर्म और जैन दर्शन बहुत सूक्ष्म व स्थूल जगत की सूक्ष्मता से जुड़ा हुआ है। इसलिए हमें बहुत सावधानी, पूर्ण विवेक व समर्पण के साथ उन तत्त्वों की गहराई तक पहुँचना होगा जिससे आत्मा पर अशुभ परिणामों, पाप की प्रवृत्तियों और मिथ्यात्व के कदम-कदम पर चिपके हुए एटमों को अपनी सम्यक् साधना के माध्यम से हटाया जाकर आत्मा के शुद्ध स्वरूप में खुद को समाहित किया जा सके। वास्तविकता की अनुभूति के लिए और वास्तविक स्वरूप के परिचय हेतु जैसा है, वैसा ही देखने के लिए सम्यक्दृष्टि बनना होगा। रेल की पटरी कभी रेल को चला नहीं सकती, लेकिन चलाने में

वही सहयोगी है। पेड़ की छाया पथिक को छाया नहीं दे सकती, लेकिन वह सहायक बन सकती है। उसी प्रकार आत्म-दर्शन व आत्म-प्रगति में जो सहायक है, वह धर्म है और जो रुकावट पैदा करता है, वह अधर्म है। हमें धर्म के तत्त्वों को पकड़कर आत्मा से जुड़ना है और तभी परम सुख, परम शान्ति एवं परम आनन्द संभव है। ■

राग रंग से मुखड़ा मोड़ो

श्री मोहन कोठारी 'विनर'

(तर्जः- वारी जाऊँ चिरमी ने......।)

राग रंग से मुखड़ा मोड़ो, धर्म से अपना नाता जोड़ो।
ये विषय नहीं सुखकार, सुणजो नर-नारी।
ये मधु लिपटी तलवार, सुणजो भवि प्राणी।
राग रंग से मुखड़ा..........।।1।।

विषय कषाय है दुःख री खाणी, नहीं कुछ इण में आणी जाणी।
होवे जीवन यह बर्बाद, सुणजो नर-नारी।
ये मधु लिपटी तलवार, सुणजो भवि प्राणी।
राग रंग से मुखड़ा..........।।2।।

दुर्गति का मेहमान बनावे, संघ समाज में नाम डूबावे।
थे करजो खूब विचार, सुणजो नर-नारी।
ये मधु लिपटी तलवार, सुणजो भवि प्राणी।
राग रंग से मुखड़ा..........।।3।।

विषयों में तुम क्यों डूबे हो, जिनवाणी को क्यों भूले हो।
है कदम-कदम पर हार, सुणजो नर-नारी।
ये मधु लिपटी तलवार, सुणजो भवि प्राणी।
राग रंग से मुखड़ा..........।।4।।

प्रभु आज्ञा को मन में धारो, तप त्याग से निज को निहारो।
होवे अपना आत्म कल्याण, सुणजो नर-नारी।
ये मधु लिपटी तलवार, सुणजो भवि प्राणी।
राग रंग से मुखड़ा..........।।5।।

-जनता साड़ी सेण्टर, स्टेशन रोड़, दुर्ग-491001 (छत्तीसगढ़)

प्रवचन

अतिजात बनें, अपजात नहीं

श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी म.सा.

श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी म.सा. द्वारा महावीर भवन, अलवर में 2 एवं 3 सितम्बर, 2015 को फरमाए इस प्रवचन का संकलन-सम्पादन श्री ओमप्रकाशजी गुप्ता, राजस्थान टाइम्स, अलवर द्वारा किया गया है।-**सम्पादक**

संसार में मूल्यवान कौन है? मूल्यवान बाहर का वैभव नहीं, बल्कि मूल्यवान भीतर की वास्तविकता है। फूल बाहर से सुंदर है, परन्तु खुशबू नहीं है। पैन बहुत सुंदर है, लेकिन उसमें स्याही नहीं है। घर बहुत बढ़िया व सभी सुविधाओं से भी परिपूर्ण है, परन्तु मानव रहित है। शरीर आभूषणों से सुसज्जित है, लेकिन उसमें प्राण नहीं हैं। तब क्या इन भौतिक वस्तुओं या पदार्थों का कोई मौलिक महत्त्व है? इसी तरह मानव जीवन यदि धर्म विहीन है, तब वह व्यर्थ ही है। मूल्यवान वही होता है जिसने सारभूत धर्म को स्वीकार किया है। बिना धर्म के जीवन का कभी कोई मूल्य नहीं रहा और उसके कारण जीव ऐसे-ऐसे, चिकने-निकाचित कर्म का बंध कर बैठता है, जिसमें फिर भव-भवों तक ठोकरें सहन करनी पड़ती हैं। ध्यान रहे- बाहर की सुख-सुविधाएँ क्षणभंगुर हैं। ये सब एक दिन मिटने-छूटने वाला ही नहीं, वरन् कर्मों का बोझा बढ़ाने में भी अपनी अज्ञानता की वज़ह से कारगर बनती हैं। स्वजन श्मशान तक, पत्नी घर की चौखट तक, शरीर चिता तक, प्राण प्यारा धन तिजोरी तक ही रह पाता है। यानी इन सबकी सीमा है और अज्ञानी व अधर्मी मानव इन्हीं में फंसकर रह जाता है। इसके विपरीत धर्म जन्म-जन्मों तक साथ रहने वाला है, परन्तु जो सारभूत है, उसे ठुकरा रहे हैं। जो पतन करने व पाप में डुबाने वाला है, उस अज्ञान में अंधे-निर्मम बन रहे हैं। क्या हमने जन्म सिर्फ परिवार के पालन-पोषण या इन्द्रिय सुख भोगने के लिए पाया? बिल्कुल नहीं, बल्कि आत्मा में परमात्मा की खोज करके भगवान बनने हेतु यह मानव भव पाया है। सच यही है कि हम जन्मते वक्त भी ऐसा ही वायदा करके आए हैं, परन्तु जन्म के बाद संसार की हवा लगते ही सब कुछ भूलते व भुलाते आ रहे हैं। तभी तो ज्ञानी भगवंत समझाते हैं कि हे नादान प्राणी! जो सबसे अधिक मूल्यवान, महत्त्वपूर्ण और कल्याणकारी है, उस आत्मा के प्रति शुद्ध और शाश्वत वीतराग धर्म की शरण लेकर उसके लिए पुरुषार्थ करें वर्ना फिर मौका हाथ से निकलने के बाद बहुत पछतावा होगा। जीवन को सफल बनाने के लिए या तो अतिजात (पिता से अधिक गुणवान) सुपुत्र या फिर अनुजात (पिता के सदृश) पुत्र बनें, लेकिन अपजात (पिता से हीन) कुपुत्र कभी मत बनना। अर्थात् मानव

शरीर और अच्छा कुल मिलने के बाद भी कुल-परिवार-खानदान की छवि को कलंकित नहीं करना। ऐसी कोई करनी नहीं की जाएं जिससे मां-पिता की इज्जत को धब्बा लगे। हमें अपजात से अनुजात और फिर अतिजात के लिए पराक्रम करना चाहिए तभी यह जीवन मूल्यवान चरितार्थ हो पाएगा।

ज्ञानियों ने शाश्वत धर्म की पूंजी कमाने व बढ़ाने को सम्यक् पुरुषार्थ कहा है। जो काया एक दिन मिटने वाली है, उसके माध्यम से ऐसे सुसंस्कारों की पूंजी कमाएँ जिससे आत्मा का गौरव बढ़ सके। यह विडम्बना है कि संसार की चकाचौंध में आदमी अपने संस्कारों को भूल रहा है और कुल-खानदान की इज्जत को धब्बा लगाने पर भी शर्मसार नहीं है। जिन बड़े-बुजुर्गों ने अपने चरित्र व ईमान के बल पर शोहरत पाई थी, उन्हें भी कलियुगी कपूत कलंकित व नष्ट कर रहे हैं। ऐसे लोग ही तो 'कुलअंगार' कहे गए हैं। अर्थात् जो कुल का नाश करते हैं और फिर खुद बर्बाद होकर नरक-तिर्यंच के कारण बनते आ रहे हैं, ऐसे कुलअंगारों की आज भी कमी नहीं है और उसका मूल कारण है कि व्यक्ति में धर्म के संस्कार विलुप्त हो रहे हैं। धन-दौलत को ही भगवान माना जा रहा है जो एक दिन सर्व-विनाश का कारण बनता है। हम यदि उत्तम नहीं बन सकते तो फिर घटिया प्रवृत्ति की तरफ भी बढ़ते अपने कदमों को रोकें। ऐसा कोई कार्य अथवा कृत्य नहीं करें जिससे कुल, खानदान की बदनामी के साथ कलंक का टीका लगे। मानव जैसा श्रेष्ठ भव पाकर भी यदि हमारी प्रवृत्ति दानव जैसी बनी रही, तो समझना हम धरती पर बोझ हैं। धर्म हमें तभी तो जीना ही नहीं मरना भी सिखाता है। हम कैसे सर्व हितकारी बन सकते हैं और वैसी ही प्रवृत्ति में कैसे आगे बढ़ें, यह चिन्तन व पराक्रम ही तो धर्म का पथ है। ध्यान रखना जीवन में धन चला जाए तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा, मगर धर्म चला गया तो भव-भवों तक रोना ही पड़ेगा। इस अकाट्य सत्य को सही मान लेने में ही भलाई है वर्ना संसार की गहरी खाई में गिरने से कोई नहीं बचा पाएगा। तभी तो अतिजात जैसा जीवन बहुत श्रेष्ठ व अनुजात वाला जीवन हितकर है, मगर अपजात और कुलअंगार वाले जीवन बर्बादी के कारण हैं, उनसे बचें। ■

आवश्यक सूचना

सभी जिनवाणी एवं साहित्य सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आप अपनी जिनवाणी/साहित्य की सदस्यता को प्रमाणित करवाने हेतु अपनी सदस्यता संख्या, नाम, पता, पिनकोड, फोन नं एवं ईमेल सहित 31 दिसम्बर 2015 तक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल कार्यालय को ईमेल (sgpmandal@yahoo.in, jinvani@yahoo.co.in) से, एसएमएस (9782943720) से, व्हाटस् अप (9782943720) से अथवा पत्र द्वारा सूचित करावें, ताकि सदस्यता विवरण को दुरूस्त किया जा सके। *-मंत्री, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर*

शोधालेख

जैनधर्मदर्शन में समाधिमरण आत्महत्या नहीं

प्रो. सागरमल जैन

जैन परम्परा के सामान्य आचार-नियमों में संलेखना या संथारा (स्वेच्छापूर्वक मृत्यु-वरण) एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। जैन गृहस्थ उपासकों एवं श्रमण साधकों, दोनों के लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्यु-वरण का विधान जैन आगमों में उपलब्ध है। जैनागम-साहित्य ऐसे साधकों की जीवन गाथाओं से भरा पड़ा है, जिन्होंने स्वेच्छया मरण का व्रत अंगीकार किया था। अन्तकृतदृशांग एवं अनुत्तरौपपातिक सूत्रों में उन श्रमण साधकों का और उपासकदशांगसूत्र में आनन्द आदि उन गृहस्थ साधकों का जीवन-दर्शन वर्णित है, जिन्होंने जीवन की सांध्य-वेला में स्वेच्छा-मरण का व्रत स्वीकारा था। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार मृत्यु के दो रूप हैं- 1. स्वेच्छा-मरण या निर्भयतापूर्वक मृत्युवरण और 2. अनिच्छापूर्वक या भयपूर्वक मृत्यु से ग्रसित होना।[1] स्वेच्छा-मरण में मनुष्य का मृत्यु पर शासन होता है, जबकि अनिच्छापूर्वक मरण में मृत्यु मनुष्य पर शासन करती है। पहले को पण्डितमरण या समाधिमरण भी कहा गया है और दूसरे को बाल (अज्ञानी) मरण या असमाधिमरण कहा गया है। एक ज्ञानीजन की मौत है और दूसरी अज्ञानी की, अज्ञानी विषयासक्त होता है और इसलिए वह बार-बार मरता है, जबकि यथार्थ ज्ञानी अनासक्त होता है इसलिए वह एक ही बार मरता है।[2] जो मृत्यु से भय खाता है, उससे बचने के लिए भागा-भागा फिरता है, मृत्यु भी उसका बराबर पीछा करती रहती है, लेकिन जो निर्भय होकर मृत्यु का स्वागत करता है और उसका आलिंगन करता है, मृत्यु भी उसका पीछा नहीं करती। जो मृत्यु से भय खाता है वही मृत्यु का शिकार होता है, लेकिन जो मृत्यु से निर्भय हो जाता है वह अमरता की दिशा में आगे बढ़ जाता है। साधकों के प्रति महावीर का संदेश यही था कि मृत्यु के उपस्थित होने पर शरीरादि से अनासक्त होकर उसका आलिंगन करो।[3] महावीर के दर्शन में अनासक्त जीवन-शैली की यही महत्त्वपूर्ण कसौटी है। जो साधक मृत्यु से भागता है वह सच्चे अर्थ में अनासक्त जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ है। जिसे अनासक्त मृत्यु की कला नहीं आती, उसे अनासक्त जीवन की कला भी नहीं आ सकती। इसी अनासक्त मृत्यु की कला को संलेखना व्रत कहा गया है। जैन परम्परा में संथारा, संलेखना, समाधिमरण, पण्डितमरण और सकाम-मरण[4] आदि स्वेच्छापूर्वक मृत्यु वरण के ही पर्यायवाची नाम हैं। आचार्य समन्तभद्र संलेखना की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि

आपत्तियों, अकालों, अतिवृद्धावस्था एवं असाध्य रोगों में शरीर त्याग करना संलेखना है।[5] अर्थात् जब मृत्यु अनिवार्य-सी हो गयी हो उन स्थितियों में निर्भय होकर देहासक्ति का विसर्जन कर मृत्यु का स्वागत करना ही संलेखना व्रत है।

समाधिमरण के भेद

जैनागमों में मृत्यु-वरण के अवसरों की अपेक्षा के आधार पर समाधि-मरण के दो प्रकार कहे गये हैं- 1. सागारी संथारा और 2. सामान्य संथारा।

सागारी संथारा- अकस्मात् जब कोई ऐसी विपत्ति उपस्थित हो जाय कि जिसमें से जीवित बच निकलना सम्भव न हो, जैसे आग में घिर जाना, जल में डूबने जैसी स्थिति हो जाना अथवा हिंसक पशु या किसी ऐसे दुष्ट व्यक्ति के अधिकार में फँस जाना जहाँ सदाचार से पतित होने की संभावना हो। ऐसे संकटपूर्ण अवसरों पर जो संथारा ग्रहण किया जाता है उसे सागारी संथारा कहते हैं। यदि व्यक्ति उस विपत्ति या संकटपूर्ण स्थिति से बाहर हो जाता है तो पह पुनः देहरक्षण तथा जीवन के सामान्य क्रम को चालू रख सकता है। सागारी संथारा मृत्यु पर्यन्त के लिए नहीं, वरन् परिस्थिति विशेष के लिए होता है, अतः परिस्थिति विशेष के समाप्त हो जाने पर उस व्रत की मर्यादा भी समाप्त हो जाती है।

सामान्य संथारा- जब स्वाभाविक जरावस्था अथवा असाध्य रोग के कारण पुनः स्वस्थ जीवित रहने की समस्त आशाएँ धूमिल हो गयी हों, तब यावज्जीवन तक जो देहासक्ति एवं शरीर-पोषण के प्रयत्नों का त्याग किया जाता है वह सामान्य संथारा है। यह यावज्जीवन के लिए होता है अर्थात् देहपात पर ही पूर्ण होता है। सामान्य संथारा ग्रहण करने के लिए जैनागमों में निम्न स्थितियाँ आवश्यक मानी गयी हैं- जब सभी इन्द्रियाँ अपने कार्यों का सम्पादन करने में अक्षम हो गयी हों, जब शरीर सूख कर अस्थिपंजर रह गया हो, पचन-पाचन, आहार-विहार आदि शारीरिक क्रियाएँ शिथिल हो गयी हों और इनके कारण साधना और संयम का परिपालन सम्यक् रीति से होना सम्भव न रहा हो, तभी अर्थात् मृत्यु के उपस्थित हो जाने पर ही सामान्य संथारा ग्रहण किया जा सकता है। सामान्य संथारा तीन प्रकार का है- (1) भक्त-प्रत्याख्यान-आहार आदि का त्याग कर देना, (2) इंगितमरण-एक निश्चित भूभाग पर हलन-चलन आदि शारीरिक क्रियाएँ करते हुए आहार आदि का त्याग करना, (3) पादोपगमन- आहार आदि के त्याग के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओं का निरोध करते हुए मृत्युपर्यन्त निश्चल रूप से लकड़ी के तख्ते के समान स्थिर पड़े रहना। उपर्युक्त सभी प्रकार के समाधि-मरणों में मन का समभाव में स्थित होना अनिवार्य है।

समाधि-मरण ग्रहण करने की विधि

जैनागमों में समाधि-मरण ग्रहण करने की विधि भी बतायी गयी है। सर्वप्रथम मल-

मूत्रादि अशुचि विसर्जन के स्थान का अवलोकन कर नरम तृणों की शय्या तैयार कर ली जाती है। तत्पश्चात् सिद्ध, अरहन्त और धर्माचार्यों को विनयपूर्वक नमस्कार कर पूर्वगृहीत प्रतिज्ञाओं में लगे हुए दोषों की आलोचना और उनका प्रायश्चित्त ग्रहण किया जाता है। इसके बाद समस्त प्राणियों से क्षमा-याचना की जाती है और अन्त में अठारह पापस्थानों, अन्नादि चतुर्विध आहारों का त्याग करके शरीर के ममत्व एवं पोषण-क्रिया का विसर्जन किया जाता है। साधक प्रतिज्ञा करता है कि मैं पूर्णतः हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से विरत होता हूँ, अन्न आदि चारों प्रकार के आहार का यावज्जीवन के लिए त्याग करता हूँ। मेरा यह शरीर, जो मुझे अत्यन्त प्रिय था, मैंने इसकी बहुत रक्षा की थी, कृपण के धन के समान इसे संभालता रहा था, इस पर मेरा पूर्ण विश्वास था (कि यह मुझे कभी नहीं छोड़ेगा), इसके समान मुझे अन्य कोई प्रिय नहीं था, इसलिए मैंने इसे शीत, गर्मी, क्षुधा, तृषा आदि अनेक कष्टों से एवं विविध रोगों से बचाया और सावधानीपूर्वक इसकी रक्षा करता रहा, अब मैं इस देह का विसर्जन करता हूँ और इसके पोषण एवं रक्षण के प्रयासों का परित्याग करता हूँ।[6]

बौद्ध-परम्परा में मृत्यु-वरण

यद्यपि बुद्ध ने जैन-परम्परा के समान ही धार्मिक आत्महत्याओं को अनुचित माना है, तथापि बौद्ध-वाङ्मय में कुछ ऐसे सन्दर्भ अवश्य हैं जो स्वेच्छापूर्वक मृत्यु-वरण का समर्थन करते हैं। संयुत्तनिकाय में असाध्य रोग से पीड़ित भिक्षु वक्कलि कुलपुत्र[7] तथा भिक्षु छन्न[8] द्वारा की गयी आत्महत्या का समर्थन बुद्ध ने किया था और उन्हें निर्दोष कहकर दोनों ही भिक्षुओं को परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला बताया था। जापानी बौद्धों में तो आज भी 'हरीकरी' की प्रथा मृत्यु-वरण की सूचक है।

फिर भी जैन और बौद्ध परम्पराओं में मृत्युवरण के प्रश्न को लेकर कुछ अन्तर भी है। प्रथम तो यह कि जैन-परम्परा के विपरीत बौद्ध परम्परा में शस्त्रवध से तत्काल ही मृत्यु-वरण कर लिया जाता है। जैन आचार्यों ने शस्त्रवध आदि के द्वारा तात्कालिक मृत्यु-वरण का विरोध इसलिए किया था कि उन्हें उसमें मरणाकांक्षा की सम्भावना प्रतीत हुई। यदि मरणाकांक्षा नहीं है, तो फिर मरण के लिए इतनी आतुरता क्यों? इस प्रकार जहाँ बौद्ध-परम्परा शस्त्र के द्वारा की गयी आत्महत्या का समर्थन करती है, वहाँ जैन-परम्परा उसे अस्वीकार करती है। इस सन्दर्भ में बौद्ध-परम्परा वैदिक-परम्परा के अधिक निकट है।

वैदिक परम्परा में मृत्यु-वरण

सामान्यतया हिन्दू धर्म-शास्त्रों में आत्महत्या को महापाप माना गया है। पाराशर-स्मृति में कहा गया है कि जो क्लेश, भय, घमण्ड और क्रोध के वशीभूत होकर आत्महत्या

करता है, वह साठ हजार वर्ष तक नरकवास करता है।[9] महाभारत के आदिपर्व के अनुसार भी आत्महत्या करने वाला कल्याणप्रद लोकों में नहीं जा सकता है।[10] लेकिन इनके अतिरिक्त हिन्दू धर्म-शास्त्रों में ऐसे भी अनेक उल्लेख हैं जो स्वेच्छा-पूर्वक मृत्युवरण का समर्थन करते हैं। प्रायश्चित्त के निमित्त से मृत्युवरण का समर्थन मनुस्मृति (11.90-91), याज्ञवल्क्यस्मृति (3.253), गौतमस्मृति (23.1), वसिष्ठ धर्मसूत्र (20.22, 13-14) और आपस्तम्बसूत्र (1.9.25.1-3,6) में भी है। इतना ही नहीं, हिन्दू धर्म-शास्त्रों में ऐसे भी अनेक स्थल हैं जहाँ मृत्युवरण को पवित्र एवं धार्मिक आचरण के रूप में देखा गया है। महाभारत के अनुशासनपर्व (25.62-64), वनपर्व (85.83) एवं मत्स्यपुराण (186.34-35) में अग्निप्रवेश, जलप्रवेश, गिरिपतन, विषप्रयोग या उपवास आदि के द्वारा देह त्याग करने पर ब्रह्मलोक या मुक्ति प्राप्त होती है, ऐसा माना गया है। अपरार्क ने प्राचीन आचार्यों के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि यदि कोई गृहस्थ असाध्य रोग से पीड़ित हो, अतिवृद्ध हो, किसी इन्द्रिय से उत्पन्न आनन्द का अभिलाषी न हो, जिसने अपने कर्तव्य कर लिये हों वह मह प्रस्थान, अग्नि या जल में प्रवेश करके अथवा पर्वतशिखर से गिरकर अपने प्राणों का विसर्जन कर सकता है। ऐसा करके वह कोई पाप नहीं करता। उसकी मृत्यु तो तपों से भी बढ़कर है। शास्त्रानुमोदित कर्तव्यों के पालन में अशक्त होने पर जीने की इच्छा रखना व्यर्थ है।[11] श्रीमद्भागवत के 11वें स्कन्ध के 18वें अध्याय में भी स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण को स्वीकार किया गया है। वैदिक परम्परा में स्वेच्छा मृत्युवरण का समर्थन न केवल शास्त्रीय आधारों पर हुआ हैं, वरन् व्यावहारिक जीवन में इसके अनेक उदाहरण भी वैदिक परम्परा में उपलब्ध है। महाभारत में पाण्डवों के द्वारा हिमालय-यात्रा में किया गया देहपात मृत्यु-वरण का ही उदाहरण है। डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे ने वाल्मीकि रामायण एवं अन्य वैदिक धर्म ग्रन्थों तथा शिलालेखों के आधार पर शरभंग, महाराजा रघु, कलचुरी के राजा गांगेय, चन्देलकुल के राजा धंगदेव, चालुक्यराज सोमेश्वर आदि के स्वेच्छा मृत्यु-वरण का उल्लेख किया है।[12] मेगस्थनीज ने भी ईसवी पूर्व चतुर्थ शताब्दी में प्रचलित स्वेच्छामरण का उल्लेख किया है। प्रयाग में अक्षयवट से कूदकर गंगा में प्राणान्त करने की प्रथा तथा काशी में करौत लेने की प्रथा वैदिक परम्परा में मध्य युग तक प्रचलित थी। यद्यपि ये प्रथाएँ आज नामशेष हो गयी हैं, तथापि वैदिक संन्यासियों द्वारा जीवित समाधि लेने की प्रथा आज भी जनमानस में श्रद्धा का केन्द्र है।[13]

इस प्रकार हम देखते हैं कि न केवल जैन और बौद्ध परम्पराओं में, बल्कि वैदिक परम्परा में भी मृत्यु-वरण का समर्थन है। लेकिन जैन और वैदिक परम्पराओं में प्रमुख अन्तर यह है कि जहाँ वैदिक परम्परा में जल एवं अग्नि में प्रवेश, गिरि-शिखर से गिरना,

विष या शस्त्र प्रयोग आदि विविध साधनों में मृत्यु-वरण का विधान है, वहाँ जैन-परम्परा में इसे बालमरण की श्रेणि में रखकर इसे हेय कहा है तथा सामान्यतया केवल उपवास द्वारा ही देहत्याग का विधान है। यद्यपि ब्रह्मचर्य की रक्षा आदि कुछ प्रसंगों में तात्कालिक मृत्यु-वरण को स्वीकार किया गया है, तथापि सामान्यतया जैन आचार्यों ने मृत्यु-वरण जिसे प्रकारान्तर से आत्महत्या भी कहा जा सकता है, की आलोचना की है। आचार्य समन्तभद्र ने गिरिपतन या अग्निप्रवेश के द्वारा किये जाने वाले मृत्युवरण को लोकमूढ़ता कहा है।[14] जैन आचार्यों की दृष्टि में समाधिमरण का अर्थ मृत्यु की कामना नहीं, वरन् देहासक्ति का परित्याग है। जिस प्रकार जीवन की आकांक्षा दूषित है, उसी प्रकार मृत्यु की आकांक्षा भी दूषित कही गयी है।

समाधि-मरण के दोष- जैन आचार्यों ने समाधिमरण के लिए निम्न पाँच दोषों से बचने का निर्देश किया है- 1. जीवन की आकांक्षा, 2. मृत्यु की आकांक्षा, 3. ऐहिक सुखों की कामना, 4. पारलौकिक सुखों की कामना और 5. इन्द्रिय-विषयों के भोगों की आकांक्षा।

बुद्ध ने भी जीवन की तृष्णा और मृत्यु की तृष्णा दोनों को ही अनैतिक माना है। बुद्ध के अनुसार भवतृष्णा और विभव तृष्णा क्रमशः जीविताशा और मरणाशा की प्रतीक हैं और जब तक ये आशाएँ या तृष्णाएँ उपस्थित हैं, तब तक पूर्ण नैतिकता सम्भव नहीं है। अतः साधक को इनसे बचते ही रहना चाहिए। फिर भी यह पूछा जा सकता है कि क्या समाधि-मरण मृत्यु की आकांक्षा नहीं है?

समाधि-मरण और आत्महत्या

जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों परम्पराओं में जीविताशा और मरणाशा दोनों को ही अनुचित कहा गया है।[15] तो यह प्रश्न सहज ही उठता है कि क्या समाधिमरण मरणाकांक्षा या आत्महत्या नहीं है? वस्तुतः समाधि-मरण न तो मरणाकांक्षा है और न आत्महत्या ही। व्यक्ति आत्महत्या या तो क्रोध के वशीभूत होकर करता है या फिर सम्मान या हितों में गहरी चोट पहुँचने पर अथवा जीवन से निराश हो जाने पर करता है, लेकिन यह सभी चित्त की सांवेगिक अवस्थाएँ हैं, जबकि समाधिमरण तो चित्त की समत्व अवस्था है। अतः उसे आत्महत्या नहीं कह सकते। दूसरे, आत्महत्या या आत्मबलिदान में मृत्यु को निमन्त्रण दिया जाता है। व्यक्ति के अन्तस् में मरने की इच्छा छिपी रहती है, लेकिन समाधिमरण में मरणाकांक्षा का न रहना ही अपेक्षित है, क्योंकि समाधिमरण के प्रतिज्ञासूत्र में ही साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि मृत्यु की आकांक्षा से रहित होकर आत्मरमण करूँगा (कालं **अकंखमाणे विहरामि)** यदि समाधिमरण में मरने की इच्छा ही प्रमुख होती तो उसके प्रतिज्ञासूत्र में इन शब्दों के रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। जैन विचारकों ने तो

मरणाशंसा को समाधि-मरण का दोष ही कहा है। अतः समाधिमरण को आत्महत्या नहीं कह सकते। जैन विचारकों ने इसीलिए सामान्य स्थिति में शस्त्रवध, अग्निप्रवेश या गिरिपतन आदि के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण को अनुचित ही माना है, क्योंकि ऐसा करने में मरणाकांक्षा की सम्भावना है। समाधिमरण में आहारादि के त्याग में मृत्यु की चाह नहीं होती, मात्र देह-पोषण का विसर्जन किया जाता है। मृत्यु उसका परिणाम अवश्य है, लेकिन उसकी आकांक्षा नहीं। जैसे फोड़े की चीरफाड़ से वेदना अवश्य होती है, लेकिन उसमें वेदना की आकांक्षा नहीं होती है। एक जैन आचार्य का कहना है कि समाधिमरण की क्रिया मरण के निमित्त नहीं होकर उसके प्रतिकार के लिए है। जैसे व्रण का चीरना वेदना के लिए न होकर वेदना के प्रतिकार के लिए होता है।[16] यदि आपरेशन की क्रिया में हो जाने वाली मृत्यु हत्या नहीं है तो फिर समाधिमरण में हो जाने वाली मृत्यु भी आत्महत्या कैसे हो सकती है? एक दैहिक जीवन की रक्षा के लिए है तो दूसरी आध्यात्मिक जीवन की रक्षा के लिए है। समाधिमरण और आत्महत्या में मौलिक अन्तर है। आत्महत्या में व्यक्ति जीवन के संघर्षों से ऊबकर जीवन से भागना चाहता है। उसके मूल में कायरता है, जबकि समाधिमरण में देह और संयम की रक्षा के अनिवार्य विकल्पों में से संयम की रक्षा के विकल्प को चुनकर मृत्यु का साहसपूर्वक सामना किया जाता है। समाधिमरण में जीवन से भागने का प्रयास नहीं वरन् जीवन संध्याबेला में द्वार पर खड़ी मृत्यु का स्वागत है। आत्महत्या में जीवन से भय होता है, जबकि समाधिमरण में मृत्यु से निर्भयता होती है। आत्महत्या असमय में मृत्यु का आमन्त्रण है, जबकि संथारा या समाधिमरण मात्र मृत्यु के उपस्थित होने पर उसका सहर्ष आलिंगन है। आत्महत्या के मूल में या तो भय होता है या कामना होती है, जबकि समाधिमरण में भय और कामना दोनों की ही अनुपस्थिति आवश्यक होती है।

समाधिमरण आत्म-बलिदान भी नहीं है। शैव और शाक्त सम्प्रदायों में पशुबलि के समान आत्मबलि की प्रथा रही है, लेकिन समाधिमरण आत्म-बलिदान नहीं है, क्योंकि आत्म-बलिदान भी भावना का अतिरेक है। भावातिरेक आत्म-बलिदान की अनिवार्यता है, जबकि समाधिमरण में विवेक का प्रकटन आवश्यक है।

समाधिमरण के प्रत्यय के आधार पर आलोचकों ने यह कहने का प्रयास भी किया है कि जैन-दर्शन जीवन से इकरार नहीं करता, वरन् जीवन से इन्कार करता है, लेकिन गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह धारणा भ्रान्त सिद्ध होती है। उपाध्याय अमरमुनिजी लिखते हैं- ''वह (जैन दर्शन) जीवन से इन्कार नहीं करता, अपितु जीवन के मिथ्या मोह से इनकार करता है। जीवन जीने में यदि कोई महत्त्वपूर्ण लाभ है और वह स्वपर की हित-

साधना में उपयोगी है तो जीवन सर्वतोभावेन संरक्षणीय है।''[17] आचार्य भद्रबाहु कहते हैं- ''साधक की देह संयम की साधना के लिए है। यदि देह ही नहीं रही तो संयम कैसे रहेगा, अतः संयम की साधना के लिए देह का परिपालन इष्ट है। देह का परिपालन संयम के निमित्त है, अतः देह का ऐसा परिपालन जिसमें संयम ही समाप्त हो किस काम का?''[18] साधक का जीवन न तो जीने के लिए है न मरण के लिए है। वह तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सिद्धि के लिए है। यदि जीवन से ज्ञानादि की सिद्धि एवं वृद्धि हो तो जीवन की रक्षा करते हुए वैसा करना चाहिए और यदि मरण से ही ज्ञानादि की अभीष्ट सिद्धि होती हो तो वह मरण भी साधक के लिए शिरसा श्लाघनीय है।[19]

समाधि-मरण का मूल्यांकन

स्वेच्छा-मरण के विषय में पहला प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य को प्राणान्त करने का नैतिक अधिकार है? पं. सुखलालजी ने जैन दृष्टि से इस प्रश्न का जो उत्तर दिया है उसका संक्षिप्त सार यह है कि जैन धर्म सामान्य स्थितियों में चाहे वह लौकिक हो या धार्मिक, प्राणान्त करने का अधिकार नहीं देता है, लेकिन जब देह और आध्यात्मिक सद्गुण में से किसी एक को चुनने का समय आ गया हो तो देह का त्याग करके भी अपनी विशुद्ध आध्यात्मिक स्थिति को बचाना चाहिए; जैसे सती स्त्री दूसरा मार्ग न देखकर देहनाश के द्वारा भी अपने सतीत्व की रक्षा करती है। देह और संयम दोनों की समान भाव से रक्षा हो सके तो दोनों की ही रक्षा हो सके तो दोनों की ही रक्षा कर्त्तव्य है, पर जब एक की ही रक्षा का प्रश्न आवे तो सामान्य व्यक्ति-देह की रक्षा पसन्द करेंगे और आध्यात्मिक संयम की उपेक्षा करेंगे, जबकि समाधिमरण का अधिकारी संयम की रक्षा को महत्त्व देगा। जीवन तो दोनों ही हैं- दैहिक और आध्यात्मिक। आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए प्राणान्त या अनशन की इजाजत है। पामरों, भयभीतों और लालचियों के लिए नहीं। भयंकर दुष्काल आदि आपत्तियों में देह-रक्षा के निमित्त से संयम से पतित होने का अवसर आ जावे या अनिवार्य रूप से मरण लाने वाली बीमारियों के कारण खुद को और दूसरों को निरर्थक परेशानी होती हो तथा संयम और सद्गुण की रक्षा सम्भव न हो तब मात्र समभाव की दृष्टि से संथारे या स्वेच्छामरण का विधान है।[20] यदि सद्गुणों की रक्षा के निमित्त देह का विसर्जन किया जाता है तो वह अनैतिक नहीं है। नैतिकता की रक्षा के लिए किया गया देह-विसर्जन अनैतिक कैसे होगा?

जैन दर्शन के इस दृष्टिकोण का समर्थन गीता भी करती है। उसमें कहा है कि यदि जीवित रहकर (आध्यात्मिक सद्गुणों के विनाश के कारण) अपकीर्ति की सम्भावना हो तो उस जीवन से मरण ही श्रेष्ठ है।[21]

काका कालेलकर लिखते हैं कि मृत्यु शिकारी के समान हमारे पीछे पड़े और हम बचने के लिए भागते जावें, यह दृश्य मनुष्य को शोभा नहीं देता। जीवन का प्रयोजन समाप्त हुआ, ऐसा देखते ही मृत्यु को आदरणीय अतिथि समझकर उसे आमन्त्रण देना, उसका स्वागत करना और इस तरह से स्वेच्छा-स्वीकृत मरण के द्वारा जीवन को कृतार्थ करना यह एक सुन्दर आदर्श है। आत्महत्या को नैतिक दृष्टि से उचित मानते हुए वे कहते हैं कि ''इसे हम आत्महत्या न कहें। निराश होकर, कायर होकर या डर के मारे शरीर छोड़ देना एक किस्म की हार ही है। उसे हम जीवन-द्रोह भी कह सकते हैं। सब धर्मों ने आत्महत्या की निन्दा की है, लेकिन जब मनुष्य सोचता है कि उसके जीवन का प्रयोजन पूर्ण हुआ, ज्यादा जीने की आवश्यकता नहीं रही तब वह आत्म-साधना के अन्तिम रूप के तौर पर अगर शरीर छोड़ दे तो वह उसका हक है। मैं स्वयं व्यक्तिशः इस अधिकार का समर्थन करता हूँ।''[22]

समकालीन विचारों में धर्मानन्द कोसम्बी और महात्मा गाँधी ने भी मनुष्य की प्राणान्त करने के अधिकार का समर्थन नैतिक दृष्टि से किया था। महात्माजी का कथन है कि जब मनुष्य पापाचार का वेग बलवत्तर हुआ देखता है और आत्महत्या के बिना अपने को पाप से नहीं बचा सकता, तब होने वाले पाप से बचने के लिए उसे आत्महत्या करने का अधिकार है।[23] कोसम्बीजी ने भी स्वेच्छामरण का समर्थन किया था और उसकी भूमिका में पं. सुखलाल जी ने कोसम्बी जी की इच्छा को भी अभिव्यक्त किया था।[24]

काका कालेलकर स्वेच्छामरण को महत्त्वपूर्ण मानते हुए जैन परम्परा के समान ही कहते हैं कि- ''जब तक यह शरीर मुक्ति का साधन हो सकता है तब तक अपरिहार्य हिंसा को सहन करके भी इसे जलाना चाहिए। जब हम यह देखें कि आत्मा के अपने विकास के प्रयत्न में शरीर बाधारूप ही होता है तब हमें उसे छोड़ना ही चाहिए। जो किसी भी हालत में जीना चाहता है उसकी शरीर निष्ठा तो स्पष्ट है ही, लेकिन जो जीवन से ऊबकर अथवा केवल मरने के लिए मरना चाहता है, तो उसमें भी विकृत शरीर-निष्ठा है। जो मरण से डरता है और जो मरण ही चाहता है, वे दोनों जीवन का रहस्य नहीं जानते। व्यापक जीवन में जीना और मरना दोनों का अन्तर्भाव होता है। जिस तरह उन्मेष और निमेष दोनों क्रियाएँ मिलकर ही देखने की एक क्रिया पूरी होती है।[25]

भारतीय नैतिक चिन्तन में केवल जीवन जीने की कला पर ही नहीं, वरन् उसमें जीवन की कला के साथ-साथ मरण की कला पर भी विचार हुआ है। नैतिक चिन्तन की दृष्टि से जीवन को कैसे जीना चाहिए यही महत्त्वपूर्ण नहीं है, वरन् कैसे मरना चाहिए यह भी महत्त्वपूर्ण है। आदर्श मृत्यु ही नैतिक जीवन की कसौटी है। जीना तो विद्यार्थी के सत्रकालीन अध्ययन के समान है, जबकि मृत्यु परीक्षा का अवसर है। हम जीवन की कमाई

का अन्तिम सौदा सत्य के समय करते हैं। यहाँ चूके तो फिर पछताना होता है और इसी अपेक्षा से कहा जा सकता है कि जीवन की कला की अपेक्षा मृत्यु की कला अधिक मूल्यवान है। भारतीय नैतिक चिन्तन के अनुसार मृत्यु का अवसर ऐसा अवसर है जब अधिकांश जन अपने भावी जीवन का चुनाव करते हैं। गीता का कथन है कि मृत्यु के समय जैसी भावना होती है वैसी ही योनि जीव प्राप्त करता है (18.5-6)। जैन-परम्परा में खन्धकमुनि की कथा बताती है कि जीवन भर कठोर साधना करने वाला महान् साधक जिसने अपनी प्रेरणा एवं उद्‌बोधन से अपने सहचारी पाँच सौ साधक शिष्यों को उपस्थित मृत्यु की विषम परिस्थिति में समत्व की साधना के द्वारा निर्वाण का अमृत पान कराया वही साधक स्वयं की मृत्यु के अवसर पर क्रोध के वशीभूत हो किस प्रकार अपने साधना पथ से विचलित हो गया। वैदिक परम्परा में जड़भरत का कथानक भी यही बताता है कि इतने महान् साधक को भी मरण वेला में, हरिण पर आसक्ति रखने के कारण पशु योनि में जाना पड़ा। ये कथानक हमारे सामने मृत्यु का मूल्य उपस्थित कर देते हैं। मृत्यु जीवन की साधना का परीक्षाकाल है। इस जीवन में लक्ष्योपलब्धि का अन्तिम अवसर और भावी जीवन की साधना का आरम्भ बिन्दु है। इस प्रकार वह अपने में दो जीवनों का मूल्य सँजोए हुए है। मरण जीवन का अवश्यम्भावी अंग है। उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वह जीवन का उपसंहार है, जिसे सुन्दर बनाना एक आवश्यक कर्त्तव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्प्रति युग के प्रबुद्ध विचारक भी समाधिमरण को अनैतिक नहीं मानते हैं। अतः जैन धर्म पर लगाया जाने वाला यह आक्षेप कि वह जीवन के मूल्य को अस्वीकार करता है, उचित नहीं है। वस्तुतः समाधिमरण पर जो आक्षेप लगाये जाते हैं उनका सम्बन्ध समाधिमरण से न होकर आत्महत्या से है। कुछ विचारकों ने समाधिमरण और आत्महत्या के वास्तविक अन्तर को नहीं समझा और इसी आधार पर समाधि-मरण को अनैतिक कहने का प्रयास किया, लेकिन समाधिमरण या स्वेच्छा-मरण आत्महत्या नहीं है और इसलिए उसे अनैतिक भी नहीं कह सकते। जैन आचार्यों ने स्वयं ही आत्महत्या को अनैतिक माना है, लेकिन उनके अनुसार आत्महत्या समाधि-मरण से भिन्न है।

डॉ. ईश्वरचन्द्र ने जीवन्मुक्त व्यक्ति के स्वेच्छा-मरण को तो आत्महत्या नहीं माना है, लेकिन उन्होंने संथारे को आत्महत्या की कोटि में रखकर उसे अनैतिक भी बताया है।[26] इस सम्बन्ध में उनके तर्क का पहला भाग यह है कि स्वेच्छा-मरण का व्रत लेने वाले सामान्य जैन मुनि जीवन्तमुक्त एवं अलौकिक शक्ति से युक्त नहीं होते और अपूर्णता की दशा में लिया गया आमरण व्रत (संथारा) नैतिक नहीं हो सकता। अपने तर्क के दूसरे भाग में वे कहते हैं कि जैन-परम्परा में स्वेच्छा मृत्यु-वरण (संथारा) करने में यथार्थता की अपेक्षा

आडम्बर अधिक होता है, इसलिए वह अनैतिक भी है। जहाँ तक उनके इस दृष्टिकोण का प्रश्न है कि जीवन्मुक्त एवं अलौकिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ही स्वेच्छा-मरण का अधिकारी है, हम सहमत नहीं हैं। वस्तुतः स्वेच्छा-मरण उस व्यक्ति के लिए आवश्यक नहीं है जो जीवन्मुक्त है और जिसकी देहासक्ति समाप्त हो गयी है, वरन् उस व्यक्ति के लिए है जिसमें देहासक्ति शेष है, क्योंकि समाधिमरण तो इसी देहासक्ति को समाप्त करने के लिए है। समाधिमरण एक साधना है, इसलिए वह जीवन्मुक्त (सिद्ध) के लिए आवश्यक नहीं है। जीवन्मुक्त को तो समाधिमरण सहज ही प्राप्त होता है। जहाँ तक उनके इस आक्षेप की बात है कि समाधिमरण में यथार्थता की अपेक्षा आडम्बर ही अधिक परिलक्षित होता है, उसमें आंशिक सत्यता अवश्य हो सकती है, लेकिन इसका सम्बन्ध संथारे या समाधि-मरण के सिद्धान्त से नहीं, वरन् उसके वर्तमान में प्रचलित विकृत रूप से है, लेकिन इस आधार पर उसके सैद्धान्तिक मूल्य में कोई कमी नहीं आती है। यदि व्यावहारिक जीवन में अनेक व्यक्ति असत्य बोलते हैं तो क्या उससे सत्य के मूल्य पर कोई आँच आती है? वस्तुतः स्वेच्छा-मरण के सैद्धान्तिक मूल्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

स्वेच्छा-मरण तो मृत्यु की वह कला है, जिसमें न केवल जीवन ही सार्थक होता है, वरन् मरण भी सार्थक हो जाता है। काका साहब कालेलकर ने खलील जिनान का यह वचन उद्धृत किया है कि 'एक आदमी ने आत्मरक्षा हेतु खुदकुशी की, आत्महत्या की', यह वचन सुनने में विचित्र सा लगता है।[27] आत्महत्या से आत्मरक्षा का क्या सम्बन्ध हो सकता है? वस्तुतः यहाँ आत्मरक्षा का अर्थ आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का संरक्षण है और आत्महत्या का मतलब है शरीर का विसर्जन। जब नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संरक्षण के लिए शारीरिक मूल्यों का विसर्जन आवश्यक हो, तो उस स्थिति में देह-विसर्जन या स्वेच्छा मृत्यु वरण ही उचित है। आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा प्राण-रक्षा से श्रेष्ठ है। गीता ने स्वयं अकीर्तिकर जीवन की अपेक्षा मरण को श्रेष्ठ मानकर ऐसा ही संकेत दिया है।[28] काका साहब कालेलकर के शब्दों में जब मनुष्य देखता है कि विशिष्ट परिस्थिति में जीना है तो हीन स्थिति और हीन विचार या सिद्धान्त मान्य रखना ही जरूरी है। तब श्रेष्ठ पुरुष कहता है कि जीने से नहीं, मरकर ही आत्मरक्षा होती है।[29]

वस्तुतः समाधि-मरण का व्रत हमारे आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए ही लिया जाता है और इसलिए पूर्णतः नैतिक भी है।

संदर्भः-

1. उत्तराध्ययन सूत्र, 5.2
2. वही, 5.3
3. वही, 5.3
4. रत्नकरण्डकश्रावकाचार, अध्याय 5

5. सकाम का अर्थ स्वेच्छापूर्वक है, न कि कामवासनायुक्त।
6. प्रतिक्रमण-संलेखना पाठ
7. संयुत्तनिकाय, 21.2.4.5
8. वही, 34.2.4.4
9. पाराशरस्मृति, 4.1.2
10. महाभारत, आदिपर्व, 179.20
11. अपरार्क, पृ. 536 उद्धृत धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 488
12. देखिए- धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 487
13. वही, पृ. 489
14. रत्नकरण्डकश्रावकाचार, 22
15. दर्शन और चिन्तन, पृ. 536 तथा परमसखा मृत्यु, पृ. 24
16. दर्शन और चिन्तन, खण्ड 2, पृ. 36 पर उद्धृत।
17. अमरभारती, मार्च, 1965, पृ. 26
18. ओघनिर्युक्ति, 47
19. अमरभारती, मार्च, 1965, पृ. 26 तुलना कीजिए विसुद्धिमग्ग, 1.133
20. दर्शन और चिन्तन, खण्ड 2, पृ. 533-34
21. गीता, 2.34
22. परमसखा मृत्यु, पृ. 31, 27
23. परमसखा मृत्यु, पृ. 26 पर उद्धृत।
24. पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म भूमिका।
25. परमसखा मृत्यु, पृ. 19
26. पश्चिमीय आचार विज्ञान का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. 273
27. परमसखा मृत्यु, पृ. 43
28. गीता, 2.34
29. परमसखा मृत्यु, पृ. 43

-निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड़, शाजापुर (मध्यप्रदेश)

जिज्ञासा-समाधान

प्रश्नः- समस्या अधिक है या समाधान?

उत्तरः- समस्या थोड़ी है और समाधान अधिक है। एक ही रोग की अनेक दवाइयाँ हैं। अनेक डॉक्टर हैं। अतः समस्या कम है और समाधान अधिक है। पर सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि एक समस्या खत्म नहीं हुई कि दूसरी खड़ी हो जाती है। ज्ञानी कहते हैं कि संसार में समस्या नहीं है, बल्कि संसार स्वयं एक समस्या है और जब तक समस्या के मूल को नहीं पकड़ेंगे, तब तक समस्या से, दुःख से छुटकारा होने वाला नहीं। शरीर पर फुँसी हुई, उसके ऊपर-ऊपर से मवाद निकालोगे तो फुँसी बार-बार होती रहेगी और बीज को ही निकाल दिया तो फुँसी मिट जायेगी। बस दुःख और समस्या को ऊपर से मिटाने का प्रयास करेंगे तो समस्या मिटने वाली नहीं है। क्योंकि ज्ञानी कहते हैं- **"अच्चंतकालस्स समूलगस्स, सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो"** (उत्तराध्ययन सूत्र, अ. 32, गाथा-1)। यह समस्या हमारी आज की नहीं है। अनादि काल की समस्या है।

अध्यात्म

सम्पन्नता का रहस्य

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

सम्पन्नता और दरिद्रता परस्पर विरोधी हैं। जहाँ दरिद्रता है वहाँ सम्पन्नता नहीं है। दीनता, दासता, पराधीनता, अभाव आदि दुःखों से ग्रस्त होना दरिद्रता है। ये सभी दुःख इन्द्रियों के विषय-भोगों के सुख के साथ सदा लगे रहते हैं अर्थात् आंतरिक जगत् में भोगी जीव रिक्त व दरिद्र होता है। परन्तु भोगी जीव को यह नहीं दिखाई देता है। उसे विषय-भोग सुखद, सुंदर, स्थायी व मधुर प्रतीत होते हैं। सुख-भोग की स्मृति व उसका प्रभाव उसके अंतःकरण में संस्कार के रूप में अंकित हो जाता है। इससे सुख पाने के लिए नवीन इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। इस संस्कार के कारण जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है वैसे-वैसे जगत् के पदार्थों का अधिक परिचय होता जाता है। जिन-जिन पदार्थों का परिचय होता जाता है उन-उन पदार्थों से सुख पाने की इच्छा की भी वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार आयु के बढ़ने के साथ-साथ ही कामना की वृद्धि होती जाती है। कामना की वृद्धि के साथ-साथ ही जिन पदार्थों से कामना की पूर्ति होती है उन पदार्थों के संग्रह की इच्छा प्रबल होती जाती है। उस इच्छा की पूर्ति पदार्थों के संग्रह से की जाती है। किन्तु इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं और जितनी इच्छाएँ हैं उतना ही अभाव है। इसीलिए अभाव भी अनन्त है। अभाव का होना ही दुःख है इसलिए दुःख भी अनन्त है।

परन्तु मनुष्य के पास दो प्रकार की सम्पत्ति होती है- स्थूल और सूक्ष्म अथवा भौतिक और आध्यात्मिक। बाह्य वस्तुओं का संग्रह भौतिक सम्पत्ति है और हृदय की शुद्धता आंतरिक या आध्यात्मिक सम्पत्ति है। क्षमा, निर्लोभता, सरलता, मृदुता, विनम्रता, कोमलता, उदारता, धैर्य, संयम आदि सद्गुण आध्यात्मिक सम्पत्ति हैं। जिस प्रकार स्थूल या भौतिक सम्पत्ति घटती-बढ़ती रहती है उसी प्रकार आध्यात्मिक सम्पत्ति भी घटती-बढ़ती रहती है। जैसे भौतिक सम्पत्ति के अपव्यय से, अभाव से, कमी होने से मनुष्य कठिनाई में पड़ता है वैसे ही आध्यात्मिक सम्पत्ति-हृदय की शुद्धता के अभाव से, सद्गुणों की कमी से मनुष्य दुःखी होता है। विकास की दृष्टि से विचार किया जाय तो आध्यात्मिक सम्पत्ति ही महत्त्व की वस्तु है। धन या भौतिक सम्पत्ति से जो सुख मिलता है वह सुख स्थायी हो, ऐसा नहीं होता। वह सुख क्षणिक होता है। भोग्य वस्तु के रहते हुए भी उस सुख में प्रतिक्षण क्षीणता आती ही है और अंत में वह नीरसता में बदलता ही है। परन्तु हृदय की पवित्रता से, सद्गुण रूप आध्यात्मिक सम्पत्ति से जो सुख मिलता है, वह स्थायी होता है,

उसमें क्षीणता नहीं आती, उसका अंत नीरसता में नहीं होता। वह नई कामना को जन्म नहीं देता, अतः वह अभाव एवं अशांति रहित होता है। इसकी प्राप्ति में अपने से भिन्न किसी वस्तु, व्यक्ति की अपेक्षा नहीं होती है अतः यह स्वाधीन होता है। जबकि भोग का सुख पूर्णतः भोग्य पदार्थ पर निर्भर होता है, पराधीन होता है। भौतिक या भोग के सुख को Pleasure और आध्यात्मिक सद्गुण के सुख को Happiness कह सकते हैं। भौतिक सुख के पहले व अंत में दुःख होता ही है। भौतिक सुख के भोगी को दुःख भोगना ही पड़ता है। यही नहीं, भौतिक सुख भोगते समय भी पराधीनता, उत्तेजना, आकुलता, अशांति रूप दुःख साथ लगा ही रहता है। अतः भौतिक सुख दुःख ही है।

मानव जितने भी प्रयत्न करता है, वे सब सुखी होने के लिए करता है। साधारणतः होता यह है कि सुखी होने के इन प्रयत्नों में हम उचित-अनुचित प्रवृत्ति का, कर्मों का, कर्त्तव्य का ध्यान नहीं रखकर धन-संग्रह करने के पीछे पड़े रहते हैं और यह भूल जाते हैं कि सच्चा व स्थायी सुख हृदय की पवित्रता रूप सद्गुणों से मिल सकता है, भौतिक वस्तु से नहीं। यही कारण है कि आज धनी भी दुःखी है और निर्धन भी दुःखी है।

जैसे-जैसे मनुष्य का विकास होता जाता है उसे भोग में दुःख और त्याग में सुख-अनुभव होता जाता है। अतः वह भोग छोड़ता जाता है, त्याग करता जाता है। भोग का पूर्ण त्यागी अर्थात् संयमी ही पूर्ण सुखी होता है। संयम ही सुख का हेतु है। अतः मानव जाति के सुख व विकास के लिए भोग की अपेक्षा त्याग, स्वार्थपरता की अपेक्षा सेवाभाव, संकीर्णता की अपेक्षा विशालता-विभुता आवश्यक है।

निर्धनता और अपरिग्रह में अन्तर

वस्तुओं के संग्रह या असंग्रह से निर्धनता व अपरिग्रह का सम्बन्ध नहीं है। वस्तुओं का संग्रह तो वृक्ष, पशु-पक्षियों के भी नहीं है, परन्तु इसके कारण उन्हें न तो निर्धन ही कहा जा सकता है और न अपरिग्रही ही। निर्धन तो इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि उन्हें धन की चाह नहीं है। चाह न होने से अभाव का अनुभव नहीं है। अभाव का अनुभव होना ही निर्धनता है, दरिद्रता है। इन्हें अपरिग्रही इसलिए नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने विवेक से संग्रह में पराधीनता का अनुभव कर त्याग नहीं किया है। इसी प्रकार साधु व केवलज्ञानी के प्रातःकाल में सायंकाल के भोजन का प्रबन्ध न होने जैसी स्थिति होने पर भी उन्हें निर्धन, दरिद्र या भिखमंगा नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि वे भिक्षा से ही जीवनयापन करते हैं, तथापि इन्हें भोजन के मिलने न मिलने का हर्ष, शोक, सुख-दुःख, भय-प्रलोभन नहीं है। इसलिए इन्हें दरिद्र न कहकर असीम पुण्यशाली कहा जाता है। साधु के परिग्रह का त्याग होने से अभाव या पराधीनता का दुःख नहीं है। यदि अभाव होता तो अभाव का दुःख होता

जबकि केवली को तो लाभान्तराय का पूर्ण क्षय होने से अनन्त लाभ, अनन्त ऐश्वर्य-सम्पन्न कहा गया है। वस्तुतः दरिद्र वह है जिसके दरिद्रता है। दरिद्रता वहाँ है जहाँ कामना या चाह है। चाह या कामना में ही कमी का अनुभव होता है। अपरिग्रही वह है जिसके कामना-चाह का त्याग है अर्थात् जो संग्रह या परिग्रह में सुख का अनुभव नहीं करता।

बाह्य रूप से दरिद्रता और अपरिग्रह इन दोनों में संग्रह का अभाव है। अतः बाह्य दृष्टि से दोनों एक जैसे लगते हैं, परन्तु आभ्यन्तर रूप से व परिणाम में महान् अन्तर है। दरिद्र के पास वस्तु या धन न होने पर भी उसके दिल में वस्तु या धन का मूल्य, धन का महत्त्व, धन की अभिलाषा, धन की रुचि रहती है। वह वस्तुओं का भोगी होता है जबकि अपरिग्रही चारों ओर वस्तुओं से घिरा होने पर भी, उनसे जल-कमलवत् अलिप्त रहता है। उसकी दृष्टि में वस्तु का मूल्य, महत्त्व, अभिलाषा, रुचि आदि कुछ नहीं होता है। दरिद्र भोगी होता है और अपरिग्रही योगी। दरिद्रता की देन है द्वन्द्वता और अपरिग्रह की देन है निर्द्वन्द्वता, निश्चिन्तता। दरिद्रता अभाव का द्योतक है, अपरिग्रहता पूर्णता की द्योतक है। दरिद्रता पराधीन बनाती है और अपरिग्रहता स्वाधीन। दरिद्रता, कमी, अभाव किसी को भी अभीष्ट नहीं है फिर भी कुछ-न-कुछ कमी प्रत्येक परिस्थिति में बनी रहती है और न चाहते हुए भी आ जाती है। कोई भी व्यक्ति उस कमी को दूर करने में समर्थ व स्वाधीन नहीं है, परन्तु अपरिग्रही होने में सब समर्थ और स्वाधीन हैं। यद्यपि दरिद्रता और अपरिग्रह दोनों में ही वस्तुओं का अभाव है, परन्तु अन्तर यह है कि दरिद्रता में वस्तु न होने पर भी वस्तु से सम्बन्ध बना रहता है। जैसे कि दरिद्र सड़क पर बसेरा डाले होने पर भी मकान के स्वप्न देखता रहता है। मकान से संबंध बनाये रखता है और अपरिग्रह में वस्तु तो बनी रहती है, पर उससे सम्बन्ध नहीं रहता है जैसे कि साधु भव्य भवन में ठहरने पर भी उस भवन से सम्बन्ध नहीं जोड़ता है। वस्तुतः वस्तु का सम्बन्ध ही बन्धन है, दुःख है। कारण कि इससे ही विषय-कषाय आदि दोषों की तथा अभाव, पराधीनता, संघर्ष आदि दुःखों की उत्पत्ति होती है। दरिद्रता में वस्तु का अभाव होता है और त्याग में वस्तु के सम्बन्ध का अभाव या नाश होता है। वस्तु न हो या न रहे और उसका सम्बन्ध बना रहे तथा वस्तु रहे, पर उसका सम्बन्ध न रहे, इन दोनों के परिणाम में बड़ा अन्तर है। सम्बन्ध बना रहे और वस्तु न रहे तो उसकी आसक्ति व्यक्ति को अशांति, पराधीनता, अभाव आदि दुःखों से आक्रांत कर देती है तथा सम्बन्ध नहीं रहा और वस्तु बनी रही तो वह व्यक्ति को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकती। कोई कैसा भी उच्च कोटि का साधक हो, शरीर, भूमि, पर्यावरण आदि वस्तु तो वहाँ बनी ही रहेगी। इस दृष्टि से किसी वस्तु का होना या न होना साधना में हेतु नहीं है। प्रत्युत वस्तुओं का सम्बन्ध विच्छेद होना हेतु है।

समस्त वस्तुओं से सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद हो जाने पर वर्तमान में ही साधक वीतराग होकर चिर शान्ति, पूर्ण मुक्ति (स्वाधीनता) अक्षय-अव्याबाध-अनन्त सुख को प्राप्त कर सकता है।

श्रीमंताई और सुख

वर्तमान काल में अधिकांश लोगों का ऐसा विचार है कि धन या श्रीमंताई से सुख होता है। फलतः प्रत्येक व्यक्ति जिस किसी भी उपाय से श्रीमंत बनने के लिए प्रयत्नशील है। परन्तु 'श्रीमंत लोग सुखी होते ही हैं' उनकी यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। वस्तुतः सुख किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति की उपलब्धि पर निर्भर नहीं है, प्रत्युत उस वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति का हम कैसा उपयोग करते हैं अथवा उसका हमारे मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर निर्भर है। स्वादिष्ट मिष्ठान्न उपलब्ध हो जाने पर भी भोजन का आनन्द मिल जाय, यह आवश्यक नहीं है। स्वादिष्ट भोजन होने पर भी भूख न हो, आमाशय में पाचन-शक्ति न हो, मधुमेह जैसा रोग हो तो भोजन का आनन्द नहीं मिल सकता, सुख का अनुभव नहीं हो सकता। ऐसे कितने ही श्रीमंत देखने में आते हैं कि जिन्हें सब प्रकार के स्वादिष्ट भोजन उपलब्ध हैं फिर भी लूखी रोटी ही खानी पड़ती है। दूसरी ओर ऐसे भी श्रमिक देखे जाते हैं जो उपलब्ध भोजन का आनन्द लेते हैं। मधुर संगीत हो, परन्तु कान बहरे हों, सुन्दर चित्र या प्राकृतिक दृश्य हो, पर नयन दृष्टिहीन हों तो संगीत के माधुर्य का और चित्र-दर्शन के सौंदर्य का आनन्द नहीं आ सकता।

जब व्यक्ति उस रहस्य को समझ लेता है कि सुख की उपलब्धि वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति पर निर्भर न होकर हृदय की पवित्रता, शुद्धता पर निर्भर है तब उसका ध्यान वस्तु, परिस्थिति आदि बाह्य पदार्थों से हटकर अंतःकरण की ओर जाता है। फिर वह हृदय की शुद्धि के लिए तत्पर होता है।

परिग्रह की वृद्धि और हृदय की शुद्धि इन दोनों का साथ सम्भव नहीं है। जहाँ परिग्रह है वहाँ परमात्मा नहीं, जहाँ काम है वहाँ राम नहीं, जहाँ राम है, वहाँ काम नहीं, यह सत्य है। अतः स्वर्ग के सुख का, अपवर्ग के आनन्द की प्राप्ति का उपाय आसक्ति रहित होना ही है। स्वर्ग या देवलोक में भी जो देवता जितने उच्च स्तर का है उतनी ही उसके इन्द्रिय-भोग की सामग्री कम है, वह कम भोगी है। इससे सिद्ध होता है कि संयम में ही स्वर्ग का व अपवर्ग का सुख निहित है। हृदय की अपवित्रता या असंयम ही नारकीय दुःख का कारण है। परिग्रह को नरक का कारण बताया है जो उचित ही है। कोई परिग्रहधारी भी रहे और मुक्ति तथा स्वर्ग के श्रेष्ठ सुख भी पाना चाहे यह कदापि सम्भव नहीं है।

हम आकाश को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि चारों ओर कुछ ही दूरी पर आकाश

और धरती मिले हुए हैं, इसे क्षितिज कहते हैं। विषय सुख इसी क्षितिज के समान है। जिस प्रकार क्षितिज में धरती और आकाश मिले हुए दिखाई देते हैं और ऐसा लगता है कि कुछ दूर चलने से क्षितिज के स्थान पर पहुँच कर धरती और आकाश के मिलन को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, परन्तु जैसे ही व्यक्ति क्षितिज पर पहुँचने की आशा से उस ओर चलता है तो जितना वह आगे बढ़ता जाता है क्षितिज भी उतना ही आगे बढ़ता जाता है। कोई भी व्यक्ति निरन्तर एक जीवन की तो क्या कहें अनन्त जीवन तक चलकर भी क्षितिज पर नहीं पहुँच सकता। उसकी और क्षितिज की दूरी ज्यों की त्यों बनी रहती है। उसमें रंच मात्र भी कमी नहीं होती। सच तो यह है कि क्षितिज प्रतीत ही होता है। वास्तव में उसका स्वतंत्र अस्तित्व होता ही नहीं है। उसका अस्तित्व धोखा है। यदि क्षितिज का अस्तित्व है तो उस जगह पर भी है जहाँ पर स्वयं क्षितिज देखने वाला व्यक्ति खड़ा है। आशय यह है कि यदि क्षितिज है तो सब जगह है अथवा कहीं नहीं है।

इसी प्रकार विषय-सुख की पूर्णता की प्राप्ति के लिए वस्तुओं का संग्रह कर कृतार्थ हो जाने की आशा करना अपने आपको धोखा देना है। जैसे-जैसे विषयसुख का भोगी व्यक्ति पूर्ण सुखी होने के लिए सुख की कमी को दूर करने के लिए परिग्रह की एक सीमा का लक्ष्य निर्धारण करता है और उस सीमा या लक्ष्य तक पहुँचने के लिए वस्तुओं का संग्रह करता जाता है वैसे ही वह लक्ष्य या सीमा आगे बढ़ते जाते हैं और लक्ष्य व उसके बीच की दूरी में रंच मात्र भी कमी नहीं होती। वह दूरी ज्यों की त्यों बनी रहती है। सुख की पूर्णता के लिए एक जन्म तो क्या, अनन्त ज़न्म तक भी कोई कितना ही संग्रह करे, पूर्ण सुख की उपलब्धि भी हो नहीं सकती। कारण कि उस स्थिति की प्रतीति ही होती है, वास्तव में उसकी स्वतंत्र सत्ता व स्थिति नहीं है। क्योंकि सत्ता, स्थिति या परिस्थिति कोई भी कैसी भी क्यों न हो, उसमें कमी बनी रहती है। वह कभी भी पूर्ण हो ही नहीं सकती। इस दृष्टि से संग्रह या परिग्रहजनित सभी स्थितियाँ या परिस्थितियाँ एक ही समान हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं है। उनमें जो अन्तर दिखाई देता है वह वैसा ही है जैसा कि एक बटे दो में और एक लाख बटे दो लाख में है। कारण कि कोई भी परिग्रह की कितनी ही वृद्धि करे, किसी भी परिस्थिति का निर्माण करे, उसमें नीरसता, पराधीनता, अभाव, जड़ता आयेगी ही। यह उसकी देन होगी ही। इस प्राकृतिक विधान को कोई मिटा नहीं सकता।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि परिग्रह का पूर्ण त्याग तो साधु अवस्था में ही संभव है, हम गृहस्थ क्या करें? तो कहना होगा कि गृहस्थ अवस्था में धन-धान्य, वस्त्र-पात्र, भूमि-भवन आदि वस्तुओं की न्यूनाधिक आवश्यकता रहती ही है। ऐसी अवस्था में **प्रथम**- तो हम त्यागी न बन गृहस्थ में रहें इसे अपनी कमजोरी मानें। **द्वितीय**- हम परिग्रह

का परिमाण करें, सीमित करें, यथा संभव घटावें। **तृतीय**– जो परिग्रह अपने पास है उसे भी बुरा मानें और उससे ममता व आसक्ति घटावें। **चतुर्थ**– आजीविकार्थ धन कमाने में न्याय-नीति का ध्यान रखें। **पाँचवाँ**– इससे भी छूटना अपना लक्ष्य रखें। **छठा**– जिन वस्तुओं या सामग्री के स्वामी हैं उनका स्वयं सुख-भोग न करें और यथासंभव दूसरों को सुख पहुँचाने में उसका उपयोग करें। **सातवाँ**– भगवान वीतराग द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त का सदा स्मरण रखें कि परिग्रह दुःखद है, भव-भ्रमण कराने वाला है। परिग्रह के एवं भोगों के त्याग में ही शान्ति है, मुक्ति है, स्वाधीनता है, सुख है।

वस्तुतः सम्पन्नता है भरा-पूरा घर होना। भरा-पूरा घर वह है जहाँ वस्तुओं का अभाव नहीं है। आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ हैं। वस्तुओं का अभाव वहाँ ही नहीं है जहाँ कामनाएँ नहीं है। कामनाएँ वहीं नहीं हैं, जहाँ भोगों में जीवन बुद्धि नहीं है। भोगों में जीवन-बुद्धि उन्हीं की नहीं होती जो भोगों में दुःख का अनुभव करते हैं। ऐसे पुरुष भोगों से दूर रहते हैं। उन्हें अभाव का अनुभव नहीं होता। **अभाव का न रहना ही सम्पन्नता है।** भोगों का त्याग ही शील है, सदाचार है। शीलवान एवं सदाचारी ही सच्चे संपन्न हैं। ऐसे पुरुषों का परिवार ही संपन्न परिवार है। ऐसे पुरुष जो भी उपार्जन करते हैं वे करुणाभाव से करते हैं, वे दूसरों की, परिवार, समाज, संसार की पीड़ा दूर करने के लिए करते हैं, अपने स्वार्थ व भोग के लिए नहीं करते।

साधना का संबंध किसी विशेष वेश-भूषा, क्रियाकाण्ड, सम्प्रदाय आदि से नहीं है। ये सब तो साधना रूपी फसल की सुरक्षा में बाड़ का काम करते हैं। फसल रहित बाड़ का कोई अर्थ या लाभ नहीं है। वास्तविक साधना क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि दोषों के निवारण में है। दोषों का निवारण दोषों के प्रतिपक्षी गुणों के धारण से होता है। अतः क्रोध, मान आदि दोषों का निवारण क्षमा, मृदुता, सरलता, उदारता, मित्रता, प्रियता आदि सद्गुणों के आचरण से होता है। इन गुणों का आचरण ही साधना व धर्म है। गृहस्थ साधक का कर्त्तव्य है कि वह अपने परिवार, परिजन, पड़ौसी आदि निकटवर्ती व्यक्तियों के प्रति क्षमाशीलता, मृदुता, सरलता, प्रियता, मित्रता, उदारता, कर्त्तव्यपरायणता, समता का व्यवहार करे। यथाशक्ति उनके कष्टों व दुःखों को दूर करने में सहयोग दे, सेवा करें और बदले में कुछ न चाहें। भोगों को मर्यादित करें। घर स्वर्ग बन जायेगा। यह कहा जा सकता है कि गृहस्थ अवस्था सद्गुणों के पालन की कसौटी व प्रशिक्षणालय है। अतः जो साधक परिवार में रहते हुए परिजनों के प्रति क्षमाशीलता, मृदुता आदि सद्गुणों का आचरण न कर सके वह साधुवेश धारण कर इन गुणों का पालन कर सकेगा, यह संदेहास्पद है।

-82/127, नीलगिरी पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राज.)

शोधालेख

आगम-साहित्य में संलेखना-संथारा के संदर्भ-स्थल (2)

डॉ. पवनकुमार जैन

दिगम्बर परम्परा के आगम-ग्रन्थों में समाधि-मरण के संदर्भ स्थल

1. **पंचास्तिकाय** – कुन्दकुन्दाचार्य (द्वितीय-तृतीय शताब्दी) द्वारा रचित इस ग्रन्थ की गाथा 173 की टीका में संथारे का उल्लेख हुआ है। (परमश्रुत प्रभावक मण्डल, मुम्बई, सन् 1972)
2. **सर्वार्थसिद्धि**- यह आचार्य पूज्यपाद (पंचम-षष्ठ शती) विरचित है। इसके सातवें अध्याय के 22 वें सूत्र में संलेखना का स्वरूप बताते हुए संलेखना और आत्महत्या में अन्तर स्पष्ट किया गया है। साथ ही संलेखना जबरदस्ती नहीं करायी जाती, संलेखना क्यों करना चाहिए, इत्यादि को स्पष्ट किया गया है।
3. **समाधिशतक** आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित है। इसमें समाधिमरण के स्वरूप और उसके अतिचारों का वर्णन प्राप्त होता है।
4. **भगवती आराधना** को मूलाराधना भी कहा जाता है। इसकी रचना आचार्य शिवार्य (पंचम-षष्ठ शती) ने की है। इसमें 2164 गाथाएं हैं। समाधिमरण पर लिखा गया यह सबसे बड़ा ग्रन्थ है। इसमें प्रत्येक दृष्टिकोण से समाधिमरण पर प्रकाश डाला गया है। इसमें जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट संलेखना (समाधिमरण) की साधना का भी विवेचन है। साथ ही इसमें समाधिमरण लेने वाले महापुरुषों के दृष्टान्त भी दिये गये हैं। ('भगवती आराधना' आचार्य शिवार्यकृत, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, सन् 2004)
5. **मूलाचार**-आचार्य वट्टकेर (पंचम-षष्ठ शती) विरचित इस ग्रन्थ के 'बृहत्प्रत्याख्यानसंस्तरस्तव' नामक दूसरे अधिकार में विस्तार से एवं 'प्रत्याख्यानाधिकार' नामक तीसरे अध्याय तथा 'पंचाचार' नामक पांचवे अध्याय में संक्षेप में समाधिमरण की चर्चा की गई है। (मूलाचार, सम्पादक आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1992)
6. **रत्नकरण्डकश्रावकाचार**- स्वामी समन्तभद्र (सातवीं शती) द्वारा लिखित है। इस ग्रन्थ को सात भागों में विभाजित किया गया है – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अणुव्रत,

गुणव्रत, शिक्षाव्रत, सल्लेखनाव्रत और प्रतिमाव्रत। सल्लेखना अधिकार में वर्णन है कि श्रावक-श्राविकाओं को भी संलेखना और समाधिमरण की आराधना करनी चाहिए। साथ ही अंतिम आराधना क्यों करनी चाहिए? विधि क्या है? समय क्या है? इत्यादि विषयों के माध्यम से संलेखना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

7. **तत्त्वार्थराजवार्तिक** – आचार्य अकलंक (आठवीं सदी) ने अध्याय 7 के सूत्र 22 में संलेखना सम्बन्धी विषय को स्पष्ट करते हुए बताया है कि सभी व्रती संलेखना धारण करे, यह आवश्यक नहीं है।
8. **पद्मपुराण** – आचार्य रविषेण विरचित इस पुराण के सर्ग 14 श्लोक 203-204 में समाधिमरण से काल धर्म को प्राप्त हुआ गृहस्थ उत्तम देवों में उत्पन्न होता है, ऐसा जीव आठ भवों में मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।
9. **षट्खण्डागम (धवला टीका)** – वीरसेनाचार्य (नवमीं सदी) ने संयम की सुरक्षा के लिए श्वासोच्छ्वास आदि का निरोध कर मृत्यु को प्राप्त साधु के मरण को भक्तप्रत्याख्यान आदि तीन मरणों में से किसी एक भेद में समाविष्ट किया है। (धवला टीका पुस्तक 1, सूत्र 1.1.1)
10. **आराधनासार** आचार्य देवसेन (10वीं शताब्दी) द्वारा रचित है। इसमें सविचार भक्त प्रत्याख्यान का चालीस अधिकारों के माध्यम से विवेचन हुआ है। जैसे कि समाधिमरण लेने की मुख्य अवस्था है – अत्यधिक वृद्धावस्था, जीर्ण-शीर्ण काया, अचानक मृत्यु का प्रसंग उपस्थित होना इत्यादि।
11. **वसुनन्दी श्रावकाचार** – आचार्य वसुनन्दी (11वीं शताब्दी) कृत इस ग्रन्थ में चतुर्थ शिक्षाव्रत के रूप में समाधिमरण वर्णित है।
12. **मरणकण्डिका** आचार्य अमितगति (11वीं शताब्दी) विरचित ग्रन्थ है। आचार्य ने इस ग्रन्थ में 2240 श्लोकों के माध्यम से बाल मरणाधिकार, बाल-बाल मरणाधिकार, भक्तप्रत्याख्यान मरणाधिकार, संलेखना अधिकार, अविचार भक्तत्याग, इंगिनी एवं प्रायोपगमन अधिकार, बालपण्डित मरणाधिकार, पण्डितपण्डित मरणाधिकार इत्यादि अधिकारों के माध्यम से मरण का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। (श्रुतोदय ट्रस्ट, धरियावद, प्रथम संस्करण, सन् 2004)
13. **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** – आचार्य अमृतचन्द्राचार्य (12वीं शताब्दी) विरचित इस ग्रन्थ में श्लोक 175-180 के अन्तर्गत सल्लेखना के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। (श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास, सन् 1998)

14. **धर्मामृत (सागार)–** इसकी रचना पं. आशाधरजी (13वीं शताब्दी) ने की है। सागार का अर्थ होता है 'गृहस्थ'। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी व्यक्ति मोक्ष या निर्वाण की साधना कर सकता है। इस ग्रन्थ के आठवें अध्याय में समाधिमरण के स्वरूप, विधि, योग्य स्थान, योग्य संस्तर, समाधिमरण और आत्महत्या में अन्तर, कार्य एवं कषाय को क्षीण करने वाली साधना के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। (मोहनलाल शास्त्री, सरल जैन ग्रन्थ भण्डार, जबलपुर, वीर नि. सं. 2484)

15. **समाधिमरणोत्साह-दीपक–** यह ग्रन्थ 15 वीं शती में दिगम्बराचार्य सकलकीर्ति विरचित है। इसमें साधना करने में असमर्थ साधक द्वारा समाधिमरण अंगीकार करने को प्रशंसनीय बताया है एवं समाधिमरण के सात प्रकारों तथा इसे कब और क्यों ग्रहण किया जाए इत्यादि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। (हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, दिल्ली, सन् 1984)

नोटः– ग्रन्थकारों के समय का उल्लेख फतेहचंद बेलानी संपादित पुस्तक 'जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार' के आधार पर किया गया है।

शिलालेखों में समाधि मरण के संदर्भ-स्थल

भारत के अनेक स्थलों में अनेक शिलालेख मिले हैं जो प्रथम शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के हैं। उनमें ऐसे साधकों का नामोल्लेख है, जिन्होंने संलेखना-संथारा सहित समाधिमरण को प्राप्त किया है। इन शिलालेखों का वर्णन हीरालाल जैन द्वारा लिखित पुस्तक 'जैन शिलालेख संग्रह' भाग-1, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, वीर निर्वाण संवत् 2491 में उपलब्ध है। उक्त शिलालेखों में वर्णित साधकों के नामों का उल्लेख 'समाधिमरण' (डॉ. रज्जन कुमार) पुस्तक के पृष्ठ 174 से 179 पर भी सुलभ है। साथ ही आधुनिक काल के अर्थात् भारतीय संविधान निर्माण पूर्व संथारा करने वाले साधकों का उल्लेख भी पृ. 179 से 181 तक हुआ है।

अर्वाचीन विद्वानों द्वारा समाधिमरण पर लिखित सामग्री

1. **अखण्ड महायोग का पथ और मृत्यु-विज्ञान–** महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, द्वितीय संस्करण, सन् 2005
2. **आत्ममुक्ति–** नेमीचंद कांकरिया स्मृति ग्रन्थ नं. 3, नरेन्द्र ट्रेडिंग कार्पोरेशन, ब्यावर सन् 1992 में प्रकाशित इस लघु पुस्तिका में लेखक ने भेद-विज्ञान का वर्णन करते हुए सागार और अनागार संलेखना एवं उसकी साधना विधि को स्पष्ट किया है।
3. **आराधनापताका में समाधिमरण की अवधारणा–** साध्वी डॉ. प्रतिभाजी, प्राच्य

विद्यापीठ, शाजापुर एवं गुरु पुष्कर साधना केन्द्र, उदयपुर सन् 2010 में प्रकाशित प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्राचीनाचार्य कृत आराधनापताका प्रकीर्णक के माध्यम से आठ अध्यायों में समाधिमरण पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

4. **उत्तराध्ययन-एक परिशीलन-** डॉ. सुदर्शन लाल जैन, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, सन् 1971 में प्रकाशित। इस ग्रन्थ के पांचवें अध्याय में प्रतिपादित साध्वाचार के अनशन खण्ड में संलेखना और समाधिमरण की समालोचना की गई है।
5. **जिणधम्मो-** आचार्य नानेश, श्री समता साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, इन्दौर से प्रकाशित इस ग्रन्थ में 81वें तथा 98वें अध्याय में श्रावक-श्राविकाओं तथा साधु-साध्वियों द्वारा स्वीकार्य समाधिमरण की आराधना विषयक चर्चा की गई है।
6. **जीवन की अन्तिम मुस्कान-** उपाध्याय केवलमुनि जैन दिवाकर सेवा संघ, चिकबालापुर, सन् 1984 में प्रकाशित इस पुस्तक में समाधिमरण सम्बन्धी विषय का संक्षेप में समग्रता से विवेचन किया गया है। साथ ही इसमें वैदिक परम्परा से सम्बन्धित इच्छामृत्यु के दृष्टान्त दिये गए हैं। उपाध्यायजी ने इस पुस्तक में समाधिमरण से सम्बन्धित कुछ प्राचीन पाठ भी दिए हैं, जैसे रिष्टसूचक, सागार-संथारा एवं निरागार संथारा आदि।
7. **जैन आचार सिद्धान्त एवं स्वरूप-** आचार्य देवेन्द्रमुनि, तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, सन् 1982 में प्रकाशित इस ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड के ग्यारहवें अध्याय 'समाधिमरण की कला (संलेखना)' में समाधिमरण विषयक सभी पक्षों की विस्तार से चर्चा की गई है, साथ ही वैदिक परम्परा में प्रचलित महाप्रस्थान आदि इच्छा-मृत्यु के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है।
8. **जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन-** भाग 1-2, डॉ. सागरमल जैन, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, सन् 1982। इस ग्रन्थ के सातवें अध्याय के अनुसार जैन, बौद्ध और वैदिक तीन परम्पराओं में तप को कर्म-बन्धनों से मुक्त होने का साधन माना गया है, साथ ही जैन परम्परा के तपों में आमरण अनशन को अनशन तप का ही भाग माना गया है।
9. **जैन साधना-पद्धति में तपोयोग-** मुनि श्रीचन्द्र, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, सन् 1979। इस पुस्तक में 'तप का विधान' नामक खण्ड में संलेखना की अवधारणा और आराधना का विवेचन किया गया है।
10. **जैन तत्त्व प्रकाश-** पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज, षष्ठ प्रकरण में संलेखना का

विस्तार से वर्णन है।

11. **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष**– क्षु. जिनेन्द्र वर्णी रचित इस कोष के चौथे भाग के पृ. 382 से 397 तक संलेखना का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है।
12. **धर्मशास्त्र का इतिहास**– भाग 1-4, काणे पाण्डुरंग वामन, उ. प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, सन् 1982 में प्रकाशित इस ग्रन्थ के तृतीय भाग में विस्तार से वैदिक परम्परा सम्बन्धी मृत्युवरण के अनेक सन्दर्भों का उल्लेख किया गया है।
13. **परमसखा मृत्यु**– काकासाहेब कालेलकर, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, सन् 2002। इसमें विभिन्न पहलुओं से मृत्यु को सखा (मित्र) तुल्य बताया गया है तथा मृत्यु का कैसे वरण करना चाहिए, इसकी चर्चा की गई है।
14. **मोक्षमार्ग**– भाग 1-2 रतनलाल डोशी, श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, ब्यावर। इस ग्रन्थ के आगार-धर्म नामक तृतीय भाग, अणगार धर्म नामक चतुर्थ भाग एवं तपधर्म नामक पांचवें भाग में में समाधिमरण का उल्लेख हुआ है।
15. **मोक्ख-पुरिसत्थो (मोक्ष पुरुषार्थ)**– आचार्य श्री उमेशमुनिजी म.सा. अणु, पूज्य श्री नन्दाचार्य साहित्य समिति, मेघनगर से प्रकाशित इस ग्रन्थ के 24वें अध्याय में लगभग 75 पृष्ठों में समाधिमरण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।
16. **मैं मृत्यु सिखाता हूँ**– श्री रजनीश, राज तिलक प्रिन्टर एवं पब्लिशर्स नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, सन् 1984
17. **मृत्यु एक महोत्सव**– रतन चोरडिया, कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर, सन् 2005।
18. **मृत्यु : जीवन का अन्त नहीं**– श्यामराव व्यास, जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी (राज.) सन् 1994
19. **मृत्यु नुं माहात्म्यम्**– हीराभाई ठक्कर, कुसुम प्रकाशन, पालडी, अहमदाबाद, सन् 1998
20. **मृत्यु महोत्सव**– संकलन विनोद चिन्मय प्रज्ञा, वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,अजमेर, सन् 1986 में प्रकाशित इस पुस्तक में पं. सदासुखदासजी आदि द्वारा समाधिमरण पर लिखित लेखों का संग्रह किया गया है।
21. **संलेखना एक अनुचिन्तन**– रमेशचन्द्र जैन, श्री जैन छात्रवृत्ति ट्रस्ट, उदयपुर। इस पुस्तक में दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार संलेखना की अवधारणा और साधना का संक्षेप में वर्णन किया है।

22. **संलेखना : ए फिलोसोफिकल स्टडी**– डॉ. पी. बी. चौगले ने इस पुस्तक में दिगम्बर परम्परा के जैन साहित्य पर आधारित संलेखना का दार्शनिक विवेचन किया है।

23. **सल्लेखना से समाधि**– आचार्य विरागसागरजी, विरागविद्यापीठ, भिण्ड, सन् 2001

24. **समाधि और सल्लेखना**– प. रतनचन्द्र भारिल्ल, श्री अ. भा. दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट, जयपुर। इस पुस्तक में समाधि और संलेखना के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

25. **समाधि नो अमृतकुंभ (गुजराती)**, पू. आचार्य श्री राजेन्द्रसूरिजी म. सा., सुसंस्कार निधि ट्रस्ट।

26. **समाधिमरण**– साध्वी विजयश्री, श्री जैन संघ, सोलापुर, सन् 1993। इस पुस्तिका में लेखिका ने समाधिमरण के विविध पक्षों का उल्लेख करते हुए समाधिमरण की विधि, अतिचार आदि का वर्णन किया है।

27. **समाधिमरण**– डॉ. रज्जन कुमार, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, सन् 200 1। इस ग्रन्थ में जैन परम्परा में वर्णित समाधिमरण की अवधारणा उसके विभिन्न पक्षों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

28. **समाधिमरण स्वरूप**– पं. दौलतरामजी, जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी (राज.) सन् 1991

29. **विनोबा साहित्य**– परमधाम प्रकाशन, वर्धा, सन् 2002 में प्रकाशित 1-21 भागों में मृत्यु, मरण और समाधि आदि से सम्बन्धित विनोबा के विचारों का संग्रह है। 21वें भाग में पूर्व के 1-20 भागों की विषय सूची दी हुई है।

अंग्रेजी पुस्तकें–

30. Death with Equanimity- D.S.Baya, Prakrit Bharati Academy, Jaipur, 2007, इस पुस्तक में संलेखना संथारा के सम्बन्ध में प्रामाणिक रीति से उदाहरणों के साथ सुन्दर विवेचन हुआ है।

31. Sallekhana is not suicide- T.K.Tukol, L.D. Institute of Indology, Ahmedabad, 1976, इस पुस्तक में न्यायविद् टुकोल ने संलेखना एवं आत्महत्या में भेद का विस्तृत प्रतिपादन किया है।

समाधिमरण पर प्रकाशित कतिपय शोधालेख

1. **समाधिमरण-संथारा अहिंसा है न कि....** आचार्य श्री कनकनन्दीजी, महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, सन् 2007

2. **समाधिमरण (मृत्युवरण) : एक तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अध्ययन, जैनागमों में समाधिमरण की अवधारणा–** डॉ. सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ के पांचवें खण्ड में डॉ. सागरमल जैन द्वारा लिखित उक्त दो आलेख हैं।
3. **समाधिमरण जीवन से भागना नहीं–** डॉ. रज्जनकुमार, जैन विद्या के आयाम (खण्ड 4), पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, सन् 1994।
4. **संलेखना : स्वरूप और महत्त्व–** श्री देवन्द्रमुनि शास्त्री। कर्मयोगी श्री केसरीमलजी सुराणा अभिनन्दन ग्रन्थ, राणावास, सन् 1982।
5. **समाधिमरण–** श्री चन्दनमुनि। कर्म योगी श्री केसरीमलजी सुराणा अभिनन्दन ग्रन्थ, राणावास, सन् 1982।
6. **संलेखना : एक श्रेष्ठ मृत्यु कला–** मालवकेशरी मुनि श्री सौभाग्यमलजी। पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ, आमेट, सन् 1976।
7. **प्रकीर्णक साहित्य में समाधिमरण की अवधारणा–** डॉ. धर्मचन्द जैन, 'जैन धर्म-दर्शन : एक अनुशीलन' के आचार मीमांसा, तृतीय खण्ड में यह लेख प्रकाशित है। यह पुस्तक प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर से 2015 में प्रकाशित हुई है।

(क्रमशः)

अभिमत

संथारा लघु-विशेषांक

डॉ. एस. कृष्णचन्द चोरड़िया

अनेक पत्र-पत्रिकाओं के बीच में मैं जिनवाणी को विशेष पसन्द करता हूँ। यात्रा में भी जिनवाणी के अंक साथ रखता और पढ़ता हूँ। अभी सितम्बर-2015 का अंक मिला। यह अंक संलेखना-संथारा विषयक एक लघु विशेषांक बन गया है। इस अंक में समाविष्ट अनेक तथ्य हमेशा के लिए सहेजने योग्य हैं। ऐसे प्रामाणिक और विद्वत्तापूर्ण प्रयासों का महत्त्व समय के साथ बढ़ता जाता है। आपके द्वारा लिखित संपादकीय, संथारगपइण्णइं की गाथाएँ, परम पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा., मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा. व तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. के समाधिमरण विषयक लेखबद्ध प्रवचन एवं अन्य सामग्री में संलेखना-संथारा के अनेक प्रासंगिक पक्षों को समेट लिया गया है। यह श्रेष्ठ, सुन्दर और नवीनतम प्रस्तुति आपकी एवं आपकी टीम के समर्पण की परिचायक है।

-महासचिव, रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलोजी, सुगन हाउस, रामानुजा अय्यर स्ट्रीट, साहुकारपेट, चेन्नई-600079 (तमिलनाडु)

आचार्य पदारोहण रजत वर्ष

गुणनिधान-गुरुहीरा

श्री नौरतनमल मेहता

हे यशस्विनी कुशलवंश परम्परा के अष्टम पट्टधर

इस युग के यशस्वी-मनस्वी-तपस्वी, प्रतिपल स्मरणीय, सामायिक-स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, चारित्र-चूडामणि, इतिहास-मार्तण्ड, अध्यात्मयोगी, युगद्रष्टा-युगमनीषी आचार्यप्रवर पूज्य गुरुदेव श्री 1008 श्री हस्तीमलजी म.सा. के पट्टधर आपश्री ने पुण्यधरा पीपाड़शहर में आदि तीर्थंकर आदिनाथ भगवान के जन्म-कल्याणक की शुभतिथि वि. सं. 1995 की चैत्र कृष्णा अष्टमी तदनुसार 13 मार्च 1939 को जन्म लिया। हे मोहिनी-मोती के लाल! आपने अपना, अपने माता-पिता का, गाँधी कुल का, मरुप्रदेश मारवाड़ का, वीरप्रसूता राजस्थान का एवं आपके हजारों-हजार भक्तों का, जिन्होंने देव-गुरु-धर्म के स्वरूप की सम्यक् जानकारी करके सम्यक्त्वरत्न प्राप्त किया है, हम-सब आपके अनन्त-अनन्त उपकारों के ऋणी हैं। हे आराध्य गुरुवर्य! हम- सब आपके आचार्य-पदारोहण रजत-वर्ष के उपलक्ष्य में सविधि-सभक्ति-सश्रद्धा शतशः कोटिशः वन्दन-नमन के साथ आपश्री का अन्तर्मन से अभिनन्दन-अभिवादन-अभिवर्द्धापन करते हुए असीम आनन्द का अनुभव करते हैं।

हे सर्वजन की श्रद्धा के केन्द्र पुण्यात्मा!

आपश्री पूर्व पुण्यवानी की पूंजी लेकर जन्मे, इसीलिए आपको सुडौल-देह के साथ गौरवर्ण, स्वस्थ-तन, स्वस्थ-मन, पूर्ण इन्द्रियाँ एवं मनमोहक आकृति मिली। आपश्री का प्रशस्तभाल, नवकञ्ज तुल्य नयन, कानों पर विशाल केशराशि, साधना-आराधना-उपासना से चमकता चेहरा, हर आगत को प्रभावित करता है। आपश्री ने व्यावहारिक शिक्षण भले ही कम लिया, किन्तु गुरु हस्ती की चरण-सन्निधि में रहते हुए संस्कृत, प्राकृत, व्याकरण, आगम साहित्य एवं बोल-थोकड़ों के सतत अभ्यास से तथा स्वाध्याय की निरन्तरता, ज्ञान सीखने की सजगता और आचरण की निर्मलता के कारण आपने गुरु हस्ती का विश्वास अर्जित कर लिया। छोटी बहिन के असामयिक वियोग से आपकी विरक्तभावना बनी, वह गुरु की चरण-सन्निधि में उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होती गई।

हे संयम-पथ के पथिक!

संसार की असारता और जीवन की क्षणभंगुरता जान-समझकर आपने वि.सं. 2020

की कार्तिक शुक्ला षष्ठी को अपनी जननी-जन्मभूमि पुण्यधरा पीपाड़ में गुरु हस्ती के मुखारविन्द से पावन प्रव्रज्या अंगीकृत कर गुरु-सेवा में धूप-छांव की तरह निमग्न होकर पाँच समिति-तीन गुप्ति का यथाविधान-यथाप्रधान आचरण कर ज्ञान-दर्शन-चारित्र में रमणता का सतत-निरत अभ्यास किया। आपने अपनी असाधारण धारणाशक्ति, श्लाघ्य स्मरणशक्ति और शुद्ध साध्वाचार के बल पर सुयोग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य होने का गौरव अर्जित किया, वह अपने-आपमें अनुपम उदाहरण है। गुरु के विशिष्ट सद्गुण विनम्रता, विनयशीलता, अप्रमत्तता, परीषह-सहिष्णुता, निर्भयता, निरभिमानता, निर्लोभता, निस्पृहता जैसे गुणों के प्रति आपश्री की अनुरक्ति उत्तरोत्तर पल्लवित-पुष्पित होती गई। आपकी प्रवचनशैली, प्रत्युत्पन्नमति और प्रज्ञा-प्रतिभा जान-समझकर गुरु हस्ती ने आपको 'पंडितरत्न' की पदवी प्रदान कर प्रेरित-प्रोत्साहित किया। कालान्तर में आपकी योग्यता-क्षमता-पात्रता का आकलन करके आपको अपना उत्तराधिकारी चुना। हे गुरु हस्ती के पट्टधर! हम आपका हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

हे संघ सारथे!

गुरु हस्ती पट्टधर आपश्री ने वि.सं. 2048 की जयेष्ठ कृष्णा पंचमी तदनुसार 2 जून 1991 को सूर्यनगरी-जोधपुर में चादर-महोत्सव के पावन-पुनीत प्रसंग पर अपने हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि- "मैं संघ उन्नयन और संघहितचिन्तन में प्राण-पण से प्रयत्नशील रहूँगा।" हमने ढाई दशक तक के, आपके शासनकाल में देखा, समझा, पाया और अनुभव किया कि आपश्री सदैव सर्वात्मना-सर्वभावेन संघ-सेवा में समर्पित हैं। आपके शासनकाल में वि.सं. 2048 से लेकर अब तक के सभी चातुर्मास स्व-पर ज्ञान-ध्यान वृद्धि के साथ परस्पर प्रेम-मैत्री-सहयोग की शुभभावना से सार्थक रहे हैं। आपश्री का प्रथम वर्षावास उपाध्यायश्री सहित मुनिपुंगवों के साथ घोड़ों का चौक, जोधपुर हुआ। दूसरा चातुर्मास बालोतरा, तीसरा-लालभवन, चौथा-नेहरुपार्क, जोधपुर, पांचवा-विजयनगर, छट्ठा-अजमेर, सातवां- पीपाड़शहर, आठवाँ- मदनगंज (संयुक्त), नौवां-नागौर, दसवां- जलगांव (संयुक्त), ग्यारहवां- धुले (संयुक्त), बारहवां-बालकेश्वर-मुम्बई, तेरहवां- इचलकरंजी, चौदहवां-बैंगलुरू, पन्द्रहवां- चेन्नई, सोलहवां- बंगारपेट, सतरहवां-बीजापुर, अठारहवां- कांदिवली-मुम्बई, उन्नीसवां- अहमदाबाद, बीसवां-पाली मारवाड़, इक्कीसवां-पावटा-जोधपुर, बाईसवां-महावीरनगर-जयपुर, तेबीसवां-सवाईमाधोपुर, चौबीसवां-कोटा शहर जैसे सभी चातुर्मास एक-से-बढ़कर-एक सफल रहे हैं। रजत वर्ष का पच्चीसवां वर्षावास पल्लीवाल क्षेत्र के हिण्डौनसिटी में अनेक उपलब्धियों के साथ गतिमान है।

हे जिनशासन प्रभावक!

आपश्री के यशस्वी शासनकाल में 25 अप्रेल 2015 तक 84 मुमुक्षुओं ने जिनमें 17 संत और 67 महासतियाँ हैं, जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की है। दीक्षा महोत्सवों के आयोजनों से भी संघ-दीप्ति में चार चाँद लगे हैं। चतुर्विध संघ में ज्ञान-दर्शन-चारित्र के प्रति रुझान व लगाव के सुन्दर रूप का परिचय संत-सतीवर्ग के अन्तिम मनोरथ-सिद्धि के लक्ष्य से सहज ज्ञात होता है। आपश्री एवं आपके आज्ञानुवर्ती संत-सतीवृन्द भी श्रावक-श्राविकाओं को संथारे के साथ समाधि-मरण का सहयोग करते हैं, यह भी संघ की सौरभ है। आपश्री का संघ-दीप्ति का यह अभियान निरन्तर निर्विघ्न गतिमान रहे, इस मंगल भावना के साथ हम आपके शासन को श्रेयस्कर समझते हैं। आपश्री का शासन उत्तरोत्तर गति-प्रगति करे, यही शुभेच्छा है।

हे महामहिम महान् साधक!

गुरु हस्ती की तरह आपश्री की दिनचर्या सुव्यवस्थित सम्पादित हो रही है। आप साधना-आराधना-उपासना में निमग्न रहते हैं। संघ-समाज में और जैन-जैनेतर जनसमुदाय में अहिंसा-सत्य-सदाचार के प्रति जागृति व उत्साह बढ़ता रहे, इस लक्ष्य से आपका पुरुषार्थ सफलता प्राप्त कर रहा है। आपकी चरण-सन्निधि में आने वाले भक्तों को आप धर्म के सम्मुख लाने का सतत प्रयास करते हैं, परिणाम-स्वरूप जन-जन के मन में "व्यसन विपत्ति का घर है" यह भाव विकसित हो रहा है। गुरु हस्ती के शासनकाल में सामायिक, स्वाध्याय, साधना और सेवा के विविध प्रकल्प आपके शासन में यथाविधान-यथाप्रधान गतिमान हैं, साथ-ही-साथ आपश्री ने जैनत्व की गौरव-गरिमा और महिमा अभिवृद्धि के लिए सामूहिक भोज में रात्रिभोजन-त्याग, शादी-विवाहोत्सव जैसे प्रसंगों पर जमीकन्द के उपयोग से बचने की प्रेरणा, अनर्थदण्ड का पाप कम-से-कम लगे इस दृष्टि से सजगता रखने के आपके आह्वान से संघ-समाज में नई जागृति व स्फूर्णा का संचरण हो रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के साथ समाज-सुधार का अभियान संघ-समाज के लिए वरदान है। आपश्री के प्रेरक प्रवचन जन-जन की अन्तश्चेतना को जागृत करने में साकार हो रहे हैं, इसीलिए आपका सभी सम्प्रदायों के श्रावक-श्राविकावर्ग में वर्चस्व है। जैन समाज ही नहीं जैनेतर समाज में भी आपके त्याग-तप से, साधना-आराधना से, आचार-विचार-व्यवहार से, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रमणता से, हित-मित-मधुर वचनों से, गुणानुराग व गुणग्राहकता के भाव से, करुणा-प्रीति-मैत्री की शुभभावना से, यत्र-तत्र-सर्वत्र आपका अच्छा प्रभाव है। छोटे-से-छोटे गांव हो अथवा नगर या महानगर आपकी कथनी-करणी की एकरूपता, सिद्धान्तप्रियता, समाचारी पालन की दृढ़ता आपश्री के अतिविशिष्ट गुण समझे जाते हैं। हे गुणनिधान-गुरु हीरा! हम-सब आपके सद्गुणों के अनुरागी हैं।

हे संघ-संचालन के सजग प्रहरी!

गुरु हस्ती की चरण-सन्निधि में ही आपश्री ने संघ-संचालन की कला सीख ली, फिर गुरु हस्ती ने आपको अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर आपमें विश्वास व्यक्त किया, आपश्री उस विश्वास पर खरे उतर रहे हैं। आपके निर्देश, उपदेश, आदेश ही नहीं, संकेत भी संत-सतीवर्ग के लिए ही नहीं, अपितु चतुर्विध संघदीप्ति में सहायक हो रहे हैं। आप मनोयोग पूर्वक चतुर्विध संघ का मार्ग-दर्शन व पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, इसका हमें गर्व है। संघ-दीप्ति में आपका सकारात्मक चिन्तन और रचनात्मक योगदान स्तुत्य है। परम्परा के पोषण-रक्षण-संवर्धन में आपका पुरुषार्थ फलदायक हो, इस शुभभावना से आचार्य-पदारोहण रजत-वर्ष के पावन पुनीत प्रसंग पर हम-सब भक्ति भावना से आपश्री के चरणों में वन्दन...नमन.... अभिनन्दन करते हुए आपश्री की पूर्णतः स्वस्थ शतायुष्कता की अन्तर्मन से प्रार्थना करते हैं। जय गुरु हस्ती! जय गुरु हीरा! जय गुरु मान!

-सह-सम्पादक, जिनवाणी मासिक पत्रिका, "पारस" शिव शक्तिनगर रोड़ नं. 1, महामन्दिर तीसरी पोल के बाहर, जोधपुर-342010 (राज.)

आचार्य श्री का स्वाध्याय पर जोर क्यों था?

श्री आर प्रसन्नचन्द चोरड़िया

आज दोपहर के बाद "महान् अध्यात्म योगी आचार्य श्री हस्ती" पुस्तक हाथ लग गई। एक ही बैठक में कुछ पृष्ठों को छोड़ सारी पुस्तक पढ़ डाली। आचार्य श्री के बाल्यकाल, संयमयात्रा, आचार्य पद ग्रहण पढ़ा लेकिन जब आचार्य श्री के जीवन का संध्याकाल पढ़ा तो पढ़ते-पढ़ते रोंगटे खड़े हो गये। एक साधक की साधना कैसी होती है? एक साधक अपने लक्ष्य तक कैसे पहुँचना चाहता है? अपनी साधना के चरम पर पहुँचने की तड़पन, तमन्ना कैसी होती है? उनकी चाहना किस ऊँचाई तक पहुँच जाती है- यह सभी पढ़ते-पढ़ते मन में श्रद्धा भक्ति के भाव उमड़ने-घुमड़ने लगते हैं। अच्छे भाव जाग्रत हो जाते हैं। उस समय मन निर्मल बन जाता है। एक अलग ही आकाश की ऊँचाई में उड़ने लग जाता है। जिसमें एक निर्मल आनन्द की अनुभूति होती है। शायद यही कारण रहा होगा कि आचार्य श्री स्वाध्याय पर ज्यादा जोर दिया करते थे। स्वयं स्वाध्याय करते हुए जो अनुभूति उन्हें महसूस हुई होगी वही अनुभूति अपने श्रावकों को कराना चाहते थे। इसीलिये आचार्य श्री सामायिक व स्वाध्याय पर ज्यादा जोर देते थे, ताकि हमारा जीवन शुद्ध सात्विक बने, सत्यम्-सुन्दरम्-शिवम् की तरफ बढ़ता रहे। आजकल हमारा स्वाध्याय का सिलसिला कमज़ोर हो गया है। उसमें बढ़ोतरी के लिए हम एक दो पुस्तकें पास में रखें। जब भी समय मिले खाली समय में उन पुस्तकों के पृष्ठों को पलटते हुए कुछ पढ़े। आचार्य श्री के रास्ते का अनुसरण करें- आओ स्वाध्याय करें। *-52, कालाथी पिल्लै स्ट्रीट, चेन्नई-600079 (तमिलनाडु)*

जीवन-व्यवहार

सुख, दुःख और शान्ति

आचार्य श्री विजयरत्नसुन्दरसूरिजी

'सुख' शब्द शायद प्रतिदिन सुनाई देता है
परन्तु वह शब्द सुनते ही कई लोगों की
आँखों के सामने संपत्ति, गाडी, बंगला
इत्यादि 'सामग्रियाँ' आ जाती हैं।
कइयों की आँखों के सामने असुविधाओं को
एक तरफ धकेलने वाली 'सुविधाएँ' आ जाती हैं।
जबकि कइयों की आँखों के सामने जो है
उसमें प्रसन्न रहने की कला सिखानेवाला
'संतोष' आता है। **मन को जाँच लेना
कि वह सुख किसमें मान रहा है?
सामग्री में, सुविधाओं में अथवा संतोष में?**

दुर्गंध जिसे अच्छी नहीं लगती उसे कचरे का ढेर भी अच्छा नहीं लगता।
गन्दी नाली जिसे अच्छी नहीं लगती उसे गन्दगी भी अच्छी नहीं लगती।
झोंपड़पट्टी जिसे अच्छी नहीं लगती उसे दरिद्रता भी अच्छी नहीं लगती,
परन्तु **जीवन में दुःखद आश्चर्य तो यह निर्मित
हुआ है कि हमें दुःख बिल्कुल अच्छे नहीं लगते,
परन्तु उन दुःखों के लिए आमंत्रणपत्रिका रूप
बनने वाले पाप बहुत अच्छे लगते हैं।**

बोलने के मामले में हम यदि स्पष्ट हो जाएँ कि
"मुझे शान्ति के लिए ही बोलना है"
तो अनावश्यक- जैसा-तैसा बोलना निश्चित ही कम हो जाए और
जीने के मामले में हम यदि स्पष्ट हो जाएँ कि
"शांति स्थापित हो वैसा ही जीवन मुझे जीना है"
तो मर्यादाहीन-स्वच्छंदतायुक्त जीवनशैली पर निश्चय ब्रेक लग जाएगा।

-'इशारा' पुस्तक से साभार

तत्त्वज्ञान प्रश्नोत्तरी (क्रमशः95)

आओ मिलकर ज्ञान बढ़ाएँ

श्री धर्मचन्द जैन

(गमा का थोकड़ा)

जिज्ञासा- भव का स्थान पन्द्रहवाँ कौनसा बतलाया गया है?

समाधान- भव का स्थान पन्द्रहवाँ सन्नी मनुष्य से सम्बन्धित है। अर्थात्

1. संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी मनुष्य मरकर 8 घरों में आते हैं।
2. औदारिक के 8 जीव मरकर मनुष्य के घर में आते हैं।
3. असंज्ञी मनुष्य मरकर औदारिक के 6 घरों में आते हैं।

इस प्रकार तीन भागों में विभक्त कर भव का स्थान पन्द्रहवाँ बतलाया गया है।

जिज्ञासा- पन्द्रहवें भव स्थान का प्रथम भेद किस प्रकार से समझना चाहिए?

समाधान- संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी मनुष्य मरकर औदारिक के 8 घरों में आते हैं। 8 घर से तात्पर्य 3 स्थावर- पृथ्वी, पानी, वनस्पति। 3 विकलेन्द्रिय- तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य के घरों से है। इनमें भी पहले 3 स्थावर व 3 विकलेन्द्रिय इन 6 घरों की अपेक्षा समझ लेना चाहिए। संख्यात वर्षायुष्क सन्नी मनुष्य इन 6 घरों में आते हैं तो जघन्य 2 भव, उत्कृष्ट 8 भव लगातार कर सकते हैं। 9 ही गमों से आ सकते हैं। अतः 1x6x9=54 गमे बनते हैं। अर्थात् संख्यात वर्ष की आयु वाला एक सन्नी मनुष्य उपर्युक्त 6 घरों में 9 ही गमों से आते हैं, इस प्रकार से कुल 54 गमे बन जाते हैं।

संख्यात वर्षायुष्क सन्नी मनुष्य जब औदारिक के 2 घरों (तिर्यंच पंचेन्द्रिय व मनुष्य) में आते हैं, तब यदि वे तीसरे व नवें गमे से आते हैं तो सन्नी मनुष्य नियमा युगलिक बनते हैं। तिर्यंच युगलिक तथा मनुष्य युगलिक दोनों प्रकार के युगलिक बन सकते हैं। तीसरे तथा नवें इन दोनों गमों को छोड़कर शेष 7 गमों से आते हैं तो वे जघन्य दो भव, उत्कृष्ट 8 भव लगातार कर सकते हैं। इस प्रकार युगलिक बनने पर 1x2x2=4 गमों से जघन्य-उत्कृष्ट के बिना 2 भव ही करते हैं। शेष 7 गमों से 1x2x7=14 गमे होते हैं।

जिज्ञासा- पन्द्रहवें भवस्थान के दूसरे भेद को किस प्रकार से समझा जाना चाहिए?

समाधान- औदारिक के 8 जीव मरकर मनुष्य के घर में आते हैं। 8 जीवों से तात्पर्य 3 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य से है। उपर्युक्त 8 जीवों में से सर्वप्रथम 6 जीव लेते हैं। अर्थात् 3 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, ये 6 जीव, मनुष्य के घर में आते हैं तो जघन्य 2 भव, उत्कृष्ट 8 भव लगातार कर सकते हैं। 9 ही गमों से आ सकते हैं अतः 6x1x9=54 गमे बनते हैं।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य के घर में आता है तो यह भी तीसरे तथा नवें गमे से नियमा युगलिक बनता है, तब जघन्य उत्कृष्ट 2 ही भव करता है। शेष 7 गमों से जघन्य 2 भव, उत्कृष्ट 8 भव लगातार कर सकता है। सभी स्थानों पर 8 भव से तात्पर्य दोनों घरों के 4-4 भवों को मिलाकर समझना चाहिए।

असंज्ञी मनुष्य, मनुष्य के घर में आता है तो वह जघन्य 2 भव, उत्कृष्ट 8 भव लगातार कर सकता है। इसमें विशेषता यह है कि चौथे, पाँचवें, छठे, इन तीन गमों से ही आता है, शेष 6 गमों से नहीं आ पाता।

जिज्ञासा- पन्द्रहवें भवस्थान के तीसरे भेद को किस अपेक्षा से समझना चाहिए?

समाधान- पन्द्रहवें भवस्थान के तीसरे भेद में असंज्ञी मनुष्य, औदारिक के 6 घरों में आने का वर्णन किया गया है। 6 घरों से तात्पर्य 3 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय के घरों से है। असंज्ञी मनुष्य, औदारिक के इन 6 घरों में आता है तो जघन्य 2 भव, उत्कृष्ट 8 भव लगातार कर सकता है। जघन्य के 3 गमों से ही आता है। शेष 6 गमों से नहीं आ पाता। इसलिए 6x1x3=18 गमे बनते हैं।

जिज्ञासा- पन्द्रहवें भवस्थान के तीनों भेदों को मिलाकर कितने गमे बनते हैं?

समाधान- पन्द्रहवें भवस्थान के तीनों भेदों के गमों की जानकारी निम्न तालिका से भली-भाँति की जा सकती है-

भवस्थान	जीव	घर	गमा	कुल गमा
प्रथम भेद	1	6	9	54
	1	2	2	04 (युगलिक)
	1	2	7	14
				72 गमे
द्वितीय भेद	6	1	9	54
	1	1	2	02 (युगलिक)

	1	1	7	07
	1	1	3	03
				66 गमे
तृतीय भेद	1	6	3	18
				18 गमे

इस प्रकार 72+66+18=156 गमे बनते हैं। इनमें से 06 गमे (जघन्य उत्कृष्ट 2 भव के) युगलिक के तथा 150 गमे जघन्य 2 भव उत्कृष्ट 8 भव के बनते हैं।

जिज्ञासा- संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य की क्या-क्या प्रमुख विशेषताएँ होती हैं?

समाधान- संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य में प्रायः स्थिति के अनुपात में अवगाहना बढ़ती है। जैसे पृथक्त्व मास की स्थिति वाले की अवगाहना पृथक्त्व अंगुल की, पृथक्त्व वर्ष वाले की अवगाहना पृथक्त्व हाथ की, 1 क्रोड पूर्व वर्ष की स्थिति वालों की अवगाहना पाँच सौ धनुष की होती है।
2. उत्पत्ति के समय तो सभी जीवों में अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की ही रहती है। किन्तु यह अंगुल का असंख्यातवाँ भाग भी छोटा बड़ा होता है। यही कारण है कि जीव पज्जवा में संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में उत्पत्ति के समय की अपेक्षा जघन्य अवगाहना मानी है, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले युगलिकों में नहीं मानी। क्योंकि इनका अंगुल का असंख्यातवाँ भाग, संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों से बड़ा होता है, इसलिए उसे मध्यम अवगाहना में सम्मिलित किया गया है।
3. संख्यात वर्षायुष्क सन्नी मनुष्य ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र की साधना-आराधना कर सकते हैं। अपने सभी कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान-केवलदर्शन के साथ मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।
4. संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी मनुष्य में ज्ञान, अज्ञान तथा दर्शन के सभी उत्कृष्ट उपयोग पाए जा सकते हैं।
5. संख्यात वर्षायुष्क सन्नी मनुष्य यदि सम्यक् चारित्रवान हो तो वे पुलाक लब्धि, आहार लब्धि, पूर्ण लब्धि, परिहार विशुद्धि चारित्र, सूक्ष्मसम्पराय चारित्र, यथाख्यात चारित्र, मनःपर्याय ज्ञान, केवलज्ञान आदि प्राप्त कर सकते हैं।
6. संख्यात वर्षायुष्क सन्नी मनुष्य ही तीर्थंकर नाम कर्म के बन्ध का प्रस्थापक,

क्षायिक समकित प्राप्ति का प्रस्थापक अर्थात् प्रारम्भ करने वाला होता है।

7. संख्यात वर्षायुष्क सन्नी मनुष्यों में सातों समुद्घात, छहों संहनन, छहों संस्थान, छहों लेश्याएँ, तीनों दृष्टियाँ, पाँचों ज्ञान, तीनों अज्ञान, चारों दर्शन, सर्व सावद्य विरति रूप चारित्र, उपशम व क्षपक दोनों प्रकार की श्रेणियाँ, ग्यारह प्रकार की गुण श्रेणियाँ आदि प्राप्त हो सकती हैं।

8. संख्यात वर्षायुष्क सन्नी मनुष्य की यह भी विशेषता है कि वे अपनी इच्छाओं, वासनाओं, विकारों एवं कषायों आदि पर सम्यक् रूप से नियन्त्रण कर, उन्हें जीतकर शान्ति, समाधि, आनन्द, प्रसन्नता, क्षमा, सरलता, विनम्रता, लघुता आदि सद्गुणों को प्राप्त कर सकते हैं।

-रजिस्ट्रार, अ.भा.श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर (राज.)

माँ-बाप के उपकार

श्रीमती कमला सुराणा

उनको कभी मत भूलना, उनके बहुत उपकार हैं,
माँ-बाप वो अपने लिए, भगवान का अवतार हैं।
कष्ट सहकर वे स्वयं तुमको बचाती हर तरह,
हमसे उन्हें पीड़ा मिले, अपने लिए धिक्कार है।
पालती है जो हमें, अपने ही पावन रक्त से,
वह माँ हमारे वास्ते तो, स्वर्ग सौ-सौ बार है।
जिसकी छाया में खड़े होकर, चले हम दो कदम।
उस बाप का आशीष ही, अवलम्ब है, आधार है।
लाख हो ऐश्वर्य पर, माँ-बाप का साया न हो,
बेकार है वैभव सभी, आनन्द सब निस्सार है।
हमने तो देखा नहीं, ईश्वर कभी पर गर्व है,
दर्शन मिले माँ-बाप के ईश्वर यही साकार है।
आज धरती पर कहीं निःस्वार्थ कुछ मिलता नहीं,
बस यही रिश्ता बचा बाकी सभी व्यापार है।
जो भी हो कर दो निछावर, सौ गुना हो जायेगा।
माँ-बाप का आशीष ही सबसे बड़ा त्यौहार है।

-7, महावीर नगर, जोधपुर (राज.)

काव्य

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी (15)

मधुर व्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा.

श्रद्धेय मुनिश्री द्वारा रचित यह पद्यानुवाद सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के कार्याध्यक्ष एवं उत्कृष्ट कवि श्री सम्पतराजजी चौधरी-दिल्ली द्वारा संशोधित-सम्पादित है।**-सम्पादक**

(तर्जः- गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुनलो और सुनालो।
जीवन धन्य बनालो.....।।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपनालो।
जीवन धन्य बनालो.....।।

(छब्बीसवाँ अध्ययन : समाचारी)

कथन करूँगा उस चर्या का, दुःख से जो दे मुक्ति,
निर्ग्रंथ मुनि प्रतिपालन कर, भव पार करन की युक्ति,
मुनिजन की व्यवहार रूप यह, समाचारी को पालो।।412।।
प्रयोजन से ही बाहर जाये, करे 'आवस्सिया' वाचन,
निवृत्त होकर जब लौटे तो, करे 'निसीहिया' वाचन,
लक्ष्य चेतना रहे गमन में, इसका ध्यान रखालो।।413।।
गुरु आज्ञा से करे प्रवृत्ति, इसको 'आपृच्छा' कहते,
निषिद्ध कार्य करे आज्ञा से, उसको 'प्रतिपृच्छा' कहते,
निरुद्देश्य नहीं आये-जाये, इसकी आदत डालो।।414।।
भिक्षा में जो प्राप्त हुए हैं, दूजों को दे आमन्त्रण,
लाने को जाये तब पूछे, क्या लाऊँ मैं मुनिगण,
इसे 'छन्दना' बतलाया है, शिष्ट भाव अपनालो।।415।।
जाने इच्छा अन्य साधु की, वैसी सेवा करना,
अथवा काम कराना उनसे, 'इच्छाकार' ही रखना,
अनुग्रह हो आपस में सबके, संघीय जीवन पालो।।416।।
प्रमादवश कोई चूक हुए तो, 'मिच्छा दुक्कडम्' कहना,
'मिथ्याकार' समाचारी है, आतम निन्दा करना,
मिथ्या मान के दुष्कृत हो तो, अपने दोष निकालो।।417।।

गुरुवर देवे सूत्र-वाचना, अथवा कभी पुकारे,
निर्वाह करे तब 'तथाकार' का, तहत्ति शब्द उच्चारे,
नम्र भाव से माने उसको, आग्रह भाव छुड़ालो।।418।।
गुरुदेव जब भी आये तो, उठकर सम्मुख जाये,
'अभ्युत्थान' समाचारी है, सेवा कर हर्षाये,
गुरुपूजा करके साधुजन, गुरुता का धन पालो।।419।।
गुरु चरणों में आकर बैठे, ज्ञान सम्पदा पाने,
उपसम्पदा समाचारी है, आतम ज्ञान जगाने,
गुरु ज्ञान को अर्जित करने, गुरु सान्निध्य को पालो।।420।।
दशविध समाचारी बतलायी, साधु के जीवन में,
सद्-व्यवहार बढ़े आपस में, संघ के संयोजन में,
सम्यक् इसकी करो साधना, संघ को पुष्ट बनालो।।421।।
प्रथम प्रहर के प्रथम भाग में, दो घड़ी सूरज पाए,
वस्त्र-पात्र का प्रतिलेखन कर, गुरु वन्दन को जाये,
शिष्यजनों के लिए आवश्यक, गुरु आज्ञा को पालो।।422।।
हाथ जोड़ कर पूछे- भंते! क्या मुझको अब करना,
वैय्यावृत्त्य का कहे गुरु तो, अग्लान भाव से करना,
स्वाध्याय का यदि कहे तो, मन को उसमें रमालो।।423।।
दिन के चार भाग में करले, उत्तरगुण आराधन,
प्रथम प्रहर में स्वाध्याय हो, दूजे में हो चिन्तन,
तीजे में हो भिक्षाचारी, सूत्र पाठ फिर गालो।।424।।
रात्रि के भी चार भाग में, उत्तरगुण आराधन,
प्रथम प्रहर में स्वाध्याय हो, दूजे में हो चिन्तन,
निद्रा त्याग करे तीजे में, सूत्र पाठ फिर गालो।।425।।
पौन पोरुषी बीते जब भी, वन्दन कर आज्ञा ले ले,
प्रतिलेखन हो विधि क्रम से, मुँहपत्ति गोच्छक ले,
वस्त्र लेखना अन्त में होती, साधु नियम निभालो।।426।।
तन से ऊँचा रखे वस्त्र को, फिर उसको फैलाए,
उत्कट आसन में रहकर, कर में वस्त्र दबाए,
करें निरीक्षण चहुँ ओर से, प्रथम विधि को पालो।।427।।

जीव यदि कोई दीखे तो, यतना से झटकावे,
अगर नहीं छूटे तो उसको, यतना से पूंजावे,
उपयोग सहित हो प्रतिलेखना, जीव की रक्षा पालो।।428।।
प्रतिलेखन करने में हो, छः दोषों का वर्जन,
सात और भी दोष कहे हैं, ना उनका भी सेवन,
विधि से हो प्रतिलेखन चर्या, इसका ध्यान रखालो।।429।।
प्रतिलेखन में वर्जित है, पढ़ना और पढ़ाना,
परस्पर कथा वार्ता करना, प्रत्याख्यान कराना,
भिक्षुजन आराधक बनकर, पाप कर्म को टालो।।430।।
भक्तपान का करे गवेषण, संयम की ना हो हानि,
प्रतिलेखन के करने में भी, यतना पूर्ण निभानी,
स्वाध्याय में रत रह करके, दुःख से मुक्ति पालो।।431।।
श्रमण-सूत्र का पाठ करे, अतिचारों का आलोचन,
काया का उत्सर्ग करे फिर, आत्म-ध्यान आरोहण,
समाचारी का पालन करके, भव का बन्ध छुड़ालो।।432।।

(सत्ताईसवाँ अध्ययन : खलुंकीय)

आचार्य गुणों से युक्त मुनि, गर्गाचार्य गुणनायक,
सर्वशास्त्र विशारद थे वे, स्थविर थे गणनायक,
कुशिष्यों के क्लेश को सहते, चित्त समाधि बसालो।।433।।
विनीत बैल गाड़ी में जुतकर, मार्ग पार कर जाता,
वैसे ही संयमरत साधक, संसार पार कर जाता,
शिष्य गुरु का योग मिले तो, पार जगत कर डालो।।434।।
दुष्ट बैल से गाडीवान को, मन में क्लेश उपजता,
चित्त समाधि विचलित होती, रह-रह क्रोध दहकता,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, आर्त-रौद्र को टालो।।435।।
क्रुद्ध बैल तोड़े जुए को, या उत्पथ में जाता,
गिर पड़ता मारग में या, उछल कूद मचाता,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, दुःख से मुक्ति पा लो।।436।।
भाग खड़ा हो जाता छल से, काबू में नहीं आता,
ऐसा दुष्ट बैल वाहक को, मंजिल नहीं पहुँचाता,

कुशिष्यों का संग त्याग कर, मुक्ति मंजिल पालो।।437।।
देख दुष्टता निज शिष्यों की, चिंतन चला गुरु का,
कोई गौरव करे ऋद्धि का, कोई सुख-सुविधा का,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, संयम मार्ग बनालो।।438।।
जाते नहीं भिक्षा चर्या में, अपने मद में रहते,
नहीं छोड़ते अपने हठ को, समझाने से लड़ते,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, भिक्षावृत्ति निभालो।।439।।
समझाने से नहीं समझते, गुरु में दोष निकाले,
उलटा करे आचरण सारे, बहाने नये रचा ले,
झूठ बोलने से नहीं चूके, ऐसे शिष्य छुड़ालो।।440।।
गुरु आज्ञा बेगार समझकर, उसे टालते रहते,
कहने पर वो भृकुटि चढ़ाते, अपनी राह ही चलते,
दुष्ट शिष्य का संग त्याग कर, आत्म-क्लेश मिटालो।।441।।
शिष्यों के इन दुराचार पर, ऐसा चिन्तन उभरा,
दीक्षा दी और शास्त्र पढ़ाया, समझाया भी गहरा,
भक्तपान से पोषित करके, श्रमण धर्म प्रति पालो।।442।।
जैसे पंख लगे हंसों के, दशों दिशा उड़ जाते,
वैसे ही ये शिष्य मेरे, स्वच्छन्द बने इतराते,
भूल गये उपकार सभी ये, इनसे संग छुड़ालो।।443।।
दुष्ट बैल के मिलने पर, वाहक खिन्न हो जाता,
वैसे ही इन शिष्यों से, लाभ नहीं कुछ पाता,
इनको छोड़ समाधि पाना, श्रेय मार्ग अपनालो।।444।।
बार-बार समझाने पर भी शिष्य नहीं जब चेते,
जहाँ समाधि विचलित होती, प्राज्ञ उसे तज देते,
सार नहीं इनके संग चलना, एकाकी बन चालो।।445।।
गहरा चिन्तन किया गुरु ने, शिष्य मोह का छोड़ा,
दृढ़ता से तप संयम में, अपने मन को मोड़ा,
मृदु-मार्दव से समृद्ध होकर, आत्मभाव को पालो।।446।।

(क्रमशः)

संकलनकर्ता- नवरतन डागा, पूर्व महामंत्री, अ.भा.श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ,
'लक्ष्य' 76, नेहरुपार्क, बख्तसागर स्कीम, जोधपुर-342003 (राज)

नारी-स्तम्भ

तप और भेदविज्ञान

डॉ. दिलीप धींग

जैनाचार का एक आधार है- भेदविज्ञानमूलक तप। भेदविज्ञानमूलक होने पर ही तप सम्यक् तप बनता है। तप की आराधना आत्मशुद्धि के लिए, आत्मा और अनात्मा (देहादि) की भिन्नता की अनुभूति तथा भिन्न हो जाने के लिए की जाती है। तप की महिमा अपरम्पार है। अग्नि-स्नान किये बिना घड़ा पानी भरने योग्य नहीं बनता है। स्वर्ण तपने पर ही निखरता है। सूरज तपता है इसलिए संसार को उजाला और ऊर्जा देता है। मक्खन भी तपने पर ही शुद्ध होता है एवं मक्खन की शुद्धि के लिए पात्र को भी तपना पड़ता है। उसी प्रकार चित्त और आत्मा को निर्मल बनाने के लिए शरीर को भी तपना या तपाना पड़ता है। तप, बिना पानी का स्नान है। तीर्थंकर परमात्मा ने तप से भेदविज्ञान को पाया और भेदविज्ञान से केवलज्ञान को पाया। भगवान ऋषभदेव ने छद्मस्थकाल (केवलज्ञान से पूर्व) में एक हजार वर्ष तक तपाराधना की थी।[1] भगवान महावीर स्वामी ने बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक उत्कृष्ट तप की आराधना की थी।[2] तप को चारित्र के अन्तर्गत परिगणित करते हुए इसे मोक्ष का एक अंग माना जाता है।[3] भगवान महावीर ने तप के बारह भेद बताये हैं।[4] आत्मा से कर्मों को अलग करने की साधना ही तप है। इसलिए जो तप के भेद हैं, वे ही निर्जरा के भेद हैं। क्योंकि तप का मुख्य उद्देश्य कर्मों की निर्जरा है। तप या निर्जरा के बारह भेद इस प्रकार हैं -

1. **अनशन :** संकल्पित अवधि के लिए आहार का त्याग करना या उपवास करना अनशन तप है, इसे इत्वरिक अनशन तप कहते हैं। आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार भगवान महावीर ने साधनाकाल में सिर्फ 349 दिन आहार किया, निरन्तर आहार कभी नहीं किया। उपवासकाल में जल कभी नहीं पिया।[5] उनकी कोई भी तपस्या दो उपवास से कम नहीं थी। अंतिम आराधना संलेखना भी अनशन का एक भेद है, जिसे यावत्कथित अनशन तप कहा जाता है।
2. **अवमौदर्य या ऊनोदरी :** भूख से कम आहार करना। अल्पभोग करना और अल्पपरिग्रह रखना। अनशन और ऊनोदरी के माध्यम से आहार, शरीर और वस्तुओं की आसक्ति को कम किया जाता है, जिससे भेदविज्ञान समझ में आ सके।
3. **वृत्तिपरिसंख्यान :** आहार आदि वृत्तियों को सीमित करना। इसे भिक्षाचर्या भी कहा जाता है। अभिग्रह (तपमय संकल्प) भी इसके अन्तर्गत ही आता है। भेदविज्ञानी की आहारचर्या ऐसी होनी चाहिये, जिससे किसी को किसी प्रकार का

कष्ट या असुविधा नहीं हो।

4. **रस परित्याग :** रसरहित रुक्ष आहार, सादा-सात्त्विक आहार करना। दूध, दही, घी, तेल, मिठाई, नमक, इन छह रसों से रहित या कुछ रसों से रहित आहार करना। रस और स्वाद का त्याग भी देहासक्ति को घटाता है तथा संयम व आत्मभाव बढ़ाता है, जो भेदविज्ञान के लिए आवश्यक है।

5. **विविक्त शय्यासन :** विषय में आसक्त जीवों से रहित स्थान पर रहना। एकान्त में शयन। निर्विघ्न आत्म-साधना के लिए यह आवश्यक है। कुछ ग्रंथों में इसे प्रतिसंलीनता तप भी कहा है।[6] योगों व कषायों से परे होकर, इन्द्रियभाव (परभाव) से हटकर आत्मभाव (स्वभाव) में लीन होना प्रतिसंलीनता है।

6. **कायक्लेश :** भेदविज्ञान की साधना में सुविधावाद बाधक है। सुख-सुविधाओं के प्रति राग को तोड़ने के लिए कायक्लेश तप का महत्त्व है। शारीरिक उपसर्गों, परीषहों और कष्टों को समभाव से सहन करना। साधना की एकाग्रता के लिए विविध आसनों में स्थिर रहना। नश्वर काया के प्रति आसक्ति नहीं रखना।

7. **प्रायश्चित्त :** ग्रहण किये गये व्रतों में दोष लगने पर प्रतिक्रमण, आलोचना आदि से उन्हें दूर करना। भूल और गलती होने पर उसे स्वीकार करना और पश्चात्ताप करना। प्राकृत भाषा में प्रायश्चित्त के लिए 'पायच्छित्त' शब्द आता है। 'पाय' का अर्थ पाप और च्छित्त का आशय है छेदन करना।[7] जिससे पापों और दोषों का छेदन हो, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।

8. **विनय :** रत्नत्रय को धारण करना तथा जिन्होंने इसे धारण किया है, उनके प्रति आदरभाव रखना विनय है। तत्वार्थ सूत्र[8] में इसके चार भेद बताये हैं - ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार (व्यवहार) विनय। विनय को जिनशासन का मूल कहा गया है।[9] णमोकार महामंत्र का 'णमो' विनय की प्रेरणा देता है।

9. **वैयावृत्ति :** आचार्य, उपाध्याय, गुरु, तपस्वी, साधु, संघ आदि पूज्यजनों और उपकारियों की सेवा-शुश्रूषा करना। बीमार, पीड़ित आदि की सेवा करना भी वैयावृत्ति है। रोगी, नवदीक्षित, आचार्य आदि की सेवा करता हुआ साधक महानिर्जरा करता है और परम मुक्ति पद प्राप्त कर लेता है।[10]

10. **स्वाध्याय :** स्व यानी स्वयं का अध्ययन करना स्वाध्याय है। स्व के अध्ययन में सहयोगी सत्शास्त्र पढ़ना, श्रुताभ्यास करना भी स्वाध्याय है। 'न वि अत्थि, न वि य होही, सज्झायसमं तवोकम्मं।'[11] स्वाध्याय के समान न तो तप है, न हुआ है, न होगा।

11. **व्युत्सर्ग या कायोत्सर्ग :** देहभाव से मुक्त होकर आत्मभाव में इतना लीन हो जाना कि काया का भान ही नहीं रहे, कायोत्सर्ग है। भेदविज्ञान के लिए कायोत्सर्ग का अभ्यास अत्यन्त लाभदायक होता है। आचार्य अकलंक[12] के अनुसार निःसंगता, निर्भयता, अनासक्ति और जीने की लालसा छोड़ने पर कायोत्सर्ग का उत्कर्ष होता है यानी आत्मभाव प्रबल और प्रखर बनता है। आचार्य महाप्रज्ञ[13] कहते हैं कि कायोत्सर्ग मूलतः भेदविज्ञान का प्रयोग है। जिस दिन हमारी यह धारणा स्पष्ट होगी- 'आत्मा अलग है, शरीर अलग है', उंसी दिन राग की जड़ पर पहला प्रहार होगा। कायोत्सर्ग करने और कराने वाले व्यक्ति को यह ध्यान रखना चाहिये, कायोत्सर्ग केवल शिथिलता तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि वह भेदविज्ञान की भूमिका का स्पर्श करे।

12. **ध्यान :** शास्त्रों में ध्यान को अग्नि कहा गया है।[14] ध्यान ऐसी अग्नि है, जिसमें सभी प्रकार के अशुभ कर्म नष्ट किये जा सकते हैं। ध्यान एक ऐसी साधना है, जिससे आत्मा और शरीर की भिन्नता की स्पष्ट अनुभूति की जा सकती है। ध्यान-तप करता हुआ आत्मा भेदविज्ञान के माध्यम से आत्मा और कर्म को पृथक्-पृथक् कर देता है। इस तथ्य को समयसार में इस प्रकार उजागर किया गया है -

अप्पाणं झायन्तो दंसणणाणमओ अणण्णमओ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं।।[15]

आत्मा का ध्यान करता हुआ आत्मा दर्शन-ज्ञानमय और अपने से अनन्यमय होता हुआ अल्पकाल में ही कर्मों से विमुक्त दशा को प्राप्त करता है। जो साधक भेदविज्ञान की शक्ति से अपने स्वरूप की महिमा और आत्मा के ध्यान में लीन होता है, वह आत्मा को कर्मों से अलग कर देता है।

तप और निर्जरा के इन दस प्रकारों में आरंभिक छह तप बाहरी तप हैं तथा शेष छह तप आन्तरिक तप हैं।[16] बाह्य तप प्रकट में भी दिखाई देते हैं या दिखाई पड़ सकते हैं। लेकिन बाह्य तप भी भावपूर्ण ही होने चाहिये। अन्तर में चलने वाली शुद्धि-प्रक्रिया को आन्तरिक तप कहा जाता है। बाह्य और आन्तरिक तप एक दूसरे को पुष्ट करते हैं। तप का यह क्रम भेदविज्ञान के माध्यम से आत्मभाव की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है, जिसमें साधक शरीर की आसक्ति से परे होकर आहार और इच्छाओं का त्याग[17] करते हुए विभिन्न उपायों से ध्यान की ऊँचाइयों तक पहुँचता है तथा जीव और देह की भिन्नता को समझता व महसूस करता है। इस प्रकार तप के ये भेद, भेदविज्ञान की साधना के सोपान (सीढ़ियाँ) हैं। इसी वजह से

तप को दस धर्मों में एक उत्तम धर्म तथा उत्कृष्ट मंगल माना गया है।[18]

तप की गहराई और सूक्ष्मता में ले जाते हुए प्रवचनसार में कहा गया है कि परवस्तु की आसक्ति से रहित होना ही आत्मा का निराहार (अनशन/उपवास) रूप वास्तविक तप है।[19] तप के साथ सम्यग्दर्शन, संयम और विवेक का होना आवश्यक है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं, "संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ"[20] - संयमसहित तप यदि थोड़ा भी हो तो महाफल देता है। सम्यक् तप के सम्बन्ध में समयसार में कहा गया है -

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेई।
तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू।।[21]

जो परमार्थ में स्थित नहीं है, वह यदि तप या व्रत करता है तो उसका तप या व्रत बालतप या बालव्रत कहलाता है। आत्मा और अनात्मा के भेदज्ञान से रहित तथा ऐसे भेदज्ञान के लक्ष्य से रहित तप बालतप या अज्ञानतप कहलाता है। मरुधर केसरी मुनि मिश्रीमलजी कहते हैं, "जैसे बालक की क्रियाओं में, चेष्टाओं में कोई लक्ष्य नहीं होता, कोई विशिष्ट ध्येय नहीं होता, वे प्राय: कुतूहलप्रधान या उद्देश्यशून्य-सी होती हैं। इसी कारण किसी व्यर्थ चेष्टा या लक्ष्यहीन प्रयत्न को 'बालचेष्टा' कहा जाता है। इसी प्रकार मुक्ति के लक्ष्य से शून्य तप को भी बालतप कहा जाता है। जैनसूत्रों में प्राय: अज्ञान के अर्थ में बाल शब्द का प्रयोग हुआ है।"[22] समयसार में कहा गया है कि परमार्थ से बाहर सारी तप साधनाएँ व्यर्थ हैं, वे निर्वाण (मुक्ति) का कारण नहीं बन पाती हैं।[23] क्योंकि वे भेदविज्ञान का कारण भी नहीं बन पाती हैं।

आत्मा है स्वर्ण :

भेदविज्ञान के सन्दर्भ में आत्मा को कनक (स्वर्ण) की उपमा दी गई है।[24] लेकिन यह स्वर्ण कर्म रूपी कीचड़ में पड़ा है, अनादि काल से कर्म रूपी कीचड़ से लिपटा हुआ है। कवि बनारसीदास[25] ने भेदविज्ञान की इस प्रक्रिया पर कहा है, जैसे रजसोधा (मिट्टी में स्वर्ण तलाश करने वाला) धूल शोधकर सोना-चांदी ग्रहण कर लेता है, अग्नि धाउ (अशुद्ध सोना) को गलाकर सोना निकालती है, अशुद्ध जल में फिटकरी डालने से जल और मैल अलग-अलग हो जाता है; उसी प्रकार ज्ञानी लोग भेदविज्ञान के बल से आत्म-सम्पदा ग्रहण करते हैं और राग-द्वेषादि पुद्गलों (पर पदार्थों) को त्याग देते हैं। जिस प्रकार हंस की चोंच का स्पर्श होने से दूध और पानी अलग-अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार भेदविज्ञान की साधना से जीव तथा कर्म, शरीरादि भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ते हैं। जैसे खान में उपलब्ध स्वर्ण-अयस्क में न जाने कब से स्वर्ण और मिट्टी एकमेक हैं, वैसे ही अनादि काल से

आत्मा के साथ कर्म का संयोग है। खान से निकाले हुए स्वर्ण-अयस्क में स्वर्ण दिखाई नहीं पड़ता है। शुद्ध स्वर्ण प्राप्त करने के लिए अयस्क को अनेक प्रक्रियाओं में से गुजारना पड़ता है, तपाना पड़ता है। मैंने मेरी 'भेदविज्ञान' विषयक कविता में इस तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया है -

सम्यग्ज्ञान की सर्चलाइट लेकर ध्यान की सुरंग में जाओ
लाओ खोद-खोद कर हीरे-कोयले, स्वर्ण-मिट्‌टी सबकुछ
फिर भेदविज्ञान की प्रयोगशाला और तप की भट्‌टी में
सम्यक् प्रक्रियाओं से कर दो अलग-अलग
कोयले और हीरे को, मिट्टी और स्वर्ण को
तन और चेतन को।

आत्म-तत्त्व को पाने के लिए सम्यग्ज्ञान की सर्चलाइट लेकर ध्यान की सुरंग में जाना होता है। उस सुरंग की गहराइयों में से हीरे-कोयले, स्वर्ण-मिट्टी, सब कुछ खोद-खोद कर लाना होता है। साधक जब साधना की दिशा में आगे बढ़ता है तो अनेक जन्मों के संस्कार जागृत होने लगते हैं। वे संस्कार अच्छे-बुरे, प्रिय-अप्रिय, अनुकूल-प्रतिकूल सभी प्रकार के होते हैं। कभी-कभी साधक जो अच्छा, प्रिय और अनुकूल लगता है, उसे ही साधना की सफलता मान बैठता है। लेकिन जो इन्द्रियों को प्रिय लगता है, वह कभी स्थायी सुख देने वाला नहीं होता है। इस प्रियता के भाव और प्रभाव में साधक आत्मबोध का विस्मरण भी कर देता है। इसलिए प्रिय और अप्रिय से परे जो असली स्वर्ण या सच्चे हीरे के तुल्य आत्म-तत्त्व है, उसकी प्राप्ति के लिए भेदविज्ञान की प्रयोगशाला और तप की भट्टी में मिट्टी और स्वर्ण अथवा कोयले और हीरे को अलग-अलग करना होता है; यानी तन (शरीर) और चेतन (आत्मा) को अलग-अलग करना होता है। यहाँ भेदविज्ञान की प्रयोगशाला के साथ में तप की भट्टी का उल्लेख विशिष्ट है। सम्यक् तप की महिमा में उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है, "भवकोडी-संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ"[26], करोड़ों भवों के संचित कर्मों को तपस्या के द्वारा निर्जरित किया जा सकता है। ऐसे सम्यक् तप की विधिपूर्वक आराधना करके तन, मन, वचन, जीवन और चेतन को उज्ज्वल और पावन बनाएँ।

सन्दर्भ :

1. कल्पसूत्र 196 एवं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति 40-41
2. आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 526-535 एवं त्रिशष्टि शलाका पुरुष चरित्र 10.4.652-657
3. चारित्रान्तर्भावात् तपोपि मोक्षांगमागमे गदितम्। - पुरुषार्थसिद्धियुपाय, गाथा 197
4. उत्तराध्ययन सूत्र, तीसवाँ 'तपोमार्गगति' अध्ययन, गाथा क्रमांक 8 व 30. एवं देखें, तत्त्वार्थ

सूत्र 9.19-20

5. देखें, आचार्य देवेन्द्रमुनि की पुस्तक 'भगवान महावीर : एक अनुशीलन', पृष्ठ 372
6. भगवती सूत्र 25.7.802 एवं देखें, उत्तराध्ययन सूत्र 30.28
7. पावं छिंदइ जम्हा पायच्छित्तं त्ति भण्णइ तेण। - पंचाशक टीका 16.3
8. धम्मस्स विणओ मूलं - दशवैकालिक 9.2.2 एवं एवो मार्ग विनय तणो, भाख्यो श्री वीतराग, मूल हेतु ए मार्गनो, समजे कोई सुभाग। - आत्मसिद्धि, दोहा क्रमांक 20
9. ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारा:। - तत्त्वार्थ सूत्र 9.23
10. तत्त्वार्थ सूत्र 9.24, भगवती सूत्र 35.7 एवं स्थानांग सूत्र 5.1
11. समणसुत्तं, गाथा 479
12. नि:संगनिर्भयत्वजीविताशाव्युदासाद्यर्थो व्युत्सर्ग:। - तत्त्वार्थराजवार्तिक, 9.26.10
13. महाप्रज्ञ (आचार्य), समयसार : निश्चय और व्यवहार की यात्रा, पृष्ठ 114
14. कम्मेंधणममियं खणेण झाणानलो डहइ। - जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित 'ध्यान शतक', 101 एवं 'झाणमओ जायए अग्गी' - पंचास्तिकाय 146
15. समयसार, गाथा 189
16. से तवो दुविहो वुत्तो बाहिरब्भन्तरो तहा। - उत्तराध्ययन सूत्र 30.7
17. इच्छानिरोधस्तप: - मोक्षपंचाशत्, 48
18. दशवैकालिक 1.1, स्थानांग सूत्र 10.712
19. जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा। - प्रवचनसार, 3.27
20. सीलपाहुड, गाथा 6, एवं संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं - सीलपाहुड, गाथा 5
21. समयसार, गाथा 152,
22. मरुधर केसरी मुनि मिश्रीमलजी की पुस्तक 'जैन धर्म में तप : स्वरूप और विश्लेषण', पृष्ठ 106.
23. वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता। परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति। - समयसार, गाथा 153
24. णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं। - समयसार, गाथा 218 तथा आत्मख्याति टीका, कलश 184
25. जैसे रजसोधा रज सोधिकैं दरब काढै, पावक कनक काढि दाहत उपलकौं। ... समयसारनाटक, संवरद्वार, 10 एवं कर्ताकर्म क्रियाद्वार, 15 भी द्रष्टव्य।
26. उत्तराध्ययन सूत्र 30.6

निदेशक : अंतरराष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र, सुगन हाउस, 18, रामानुजा अय्यर स्ट्रीट, साहुकारपेट, चेन्नई-600079

धारावाहिक

लगन की वेला (15)

आचार्य श्री उमेशमुनि जी 'अणु'

आकर्षण

शिवसुन्दर सार्थवाह गुणसुन्दर का प्रिय पुत्र था। वह उनका ज्येष्ठ पुत्र था। उसके प्रति उनके हृदय में अति मोह था। वह अभी कलायतन से लौटा ही था, इसलिए उन्होंने उस पर कार्यभार अधिक नहीं डाला था। परन्तु शिवसुन्दर संस्कार सम्पन्न युवक था। उसमें दाक्षिण्य गुण भरपूर था। इसलिए वह बिना किसी प्रेरणा के गुणसुन्दरजी को गृह-कार्य और व्यापार-कार्य में सहयोग देने लग गया था। वह यह बात जानता था कि कोई भी पिता अपने सुयोग्य युवा पुत्र का गृहकार्य में सहयोग चाहता ही है। अतः उसने गृहकार्य में सहयोग देना प्रारम्भ करके पिता का मन जीत लिया।

शिवसुन्दर अभी आपण (दुकान) से घर आया ही था। यद्यपि वह दस वर्ष की आयु से ही कलायतन भेज दिया गया था, अतः उसे व्यापार पद्धति का पूर्णतः परिचय नहीं था, फिर भी आपण पर क्रय-विक्रय का कार्य दक्षता से सम्हालने लग गया। क्रेता-विक्रेता दोनों ही आपण से प्रसन्न होकर जाते थे। उसके मधुर-भाषण और कार्यलाघव से मुनीम और दुकान के कार्यकर भी प्रसन्न थे। फिर पिता क्यों न प्रसन्न होते! कार्य में व्यस्त रहते हुए भी उसकी दशा विचित्र थी। उसे थोड़ी-थोड़ी देर में गंगेश का स्मरण हो आता था। गंगेश अभी गृहकार्य में इतना लीन नहीं हुआ था, परन्तु वह शिवसुन्दर से कुछ अधिक ही व्यवहार-प्रिय था, इसलिये वह पिता के कार्य में व्यस्त होने को तत्पर था। उसके पिता कट्टर शैव थे। अतः उसके पिता ने उसे आदेश दिया था- "आयुष्मन्! कर्मक्षेत्र में तो तुम्हें उतरना ही है। फिर भी अभी ऐसी विशेष चिन्ता नहीं है। तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता अभी अच्छे प्रकार से कार्य सम्हाले हुए है। इसलिये अभी कुछ समय गृहकार्य सम्हालो तो कुछ समय अपने दर्शन के अध्ययन के लिये भी दो।" उस आदेश के अनुसार ही गंगेश कार्यरत था, परन्तु उसकी भी मनःस्थिति कुछ ऐसी ही थी। उसे भी क्षण-क्षण में शिवसुन्दर की स्मृति हो आती थी, क्योंकि लम्बे समय तक वे साथ-साथ में रहे थे और बचपन के साथी प्रायः याद आते ही हैं। परन्तु अब एक और विचित्र बात हो गयी थी कि उन्होंने जब से अरुण को देखा, तब से वह भी स्मृति में छाया रहता था। गंगेश का मन शिवसुन्दर से मिलने का हुआ।

शिवसुन्दर आपण से आकर भोजन से निवृत्त हुआ। सार्थवाह अभी घर पर नहीं थे। वे

किसी प्रयोजन से स्थानक गये थे। शिवसुन्दर आया था उसी दिन गुरु-दर्शन को गया था। फिर वह नहीं गया। सार्थवाह ने भी उसे जाने की प्रेरणा नहीं दी। अभी धर्म में वह अनबूझ ही था। इसलिये भी उसे धर्मस्थान पर जाने की इच्छा नहीं हुई। वह भोजन के बाद किंचित् विश्राम करने के लिए अर्धलेटी मुद्रा में आँखें बंद करके कुछ सोच रहा था। उसे याद आ रही थी- कलायतन की- वहाँ गंगेश के साथ बिताये हुए क्षणों की।

उसकी आँखें क्षणभर के लिये खुली और मूँद गयीं।

'कलायतन का प्रथम वर्ष तो सहमा-सहमा बीता। फिर तो हम उस माटी के ही हो गये मानो! वे लताओं के झुरमुट, वे क्रीड़ारत पक्षी, वे भोले मृग-छौंने, वह खुला नील-गगन, उसमें रजनी में हीरे-से चमकते ढेर सारे तारे! वे शीत की ठण्डी रातें! वे ग्रीष्म की उष्ण श्वास छोड़ती उमसभरी रातों में अन्तिम प्रहर में बहने वाली मधुर बयारें और वे वर्षा की भीनी-भीनी रात्रियों की मधुर निद्रा के प्रभात में जाग्रत करने वाली घण्टे की रणकारें! उन सबके बीच में यौवन की ओर चरण भरते हुए हम कुमार! कितने मस्ती से भरे दिन थे हमारे! गंगेश और मैं-काया और उसकी छाया के समान सदा साथ रहते थे। कैसे प्यारे क्षण थे। अब हम घर आ गये हैं। पर अब भी कितना प्रिय लगता है गंगेश। उसका साथ छोड़ने का मन नहीं होता। मानों हम जनम-जनम के साथी हों..... स्मृति करवट बदलती है और उसमें अरुण की आकृति उभरती है और चिन्तन भी मोड़ लेता है-' आह! नगरश्रेष्ठी का सुपुत्र! कितना सलौना! कितना भद्र! एक महान पिता का दुलारा-नयनतारा। विपुल वैभव के बीच पला हुआ। घर पर ही रहकर अध्ययन करने वाला? ऐसा क्या घटित हुआ उसके साथ जो सादगी रम गयी- उसके मन में। जहाँ वह अपने वैभव का प्रदर्शन कर सकता था- उस परीक्षणसभा में कैसे आया वह! कितना सादा वेश-परिधान! अलंकार तो नाम मात्र नहीं! और उसके पिता भी कितने महान्, उसे कितनी स्वतन्त्रता प्रदान की और उसमें कहीं अहंकार का लेश नहीं। धन्य पिता! धन्य पुत्र! वह मुक्तामाला लेकर आ रहा था। उसके मुख-मण्डल पर कैसा अद्भुत तेज। सुन्दर दीर्घ लोचनों में कितनी दिव्य ज्योति। विशाल भाल कितना दैदीप्यमान। कुण्डलाकार कुञ्चित चमकीले कृष्ण केश। अंग-अंग से झरता हुआ सौष्ठव। गोरे-गोरे सुपुष्ट सुडौल हाथ। मानो साक्षात् इन्द्र ही प्रसन्न होकर मुक्तामाला पहनाने आ रहा था। प्रसन्न इन्द्र सुहृद् बन रहा है...आ रहा है... समीप में आ रहा है... प्रथम बार देख रहा हूँ....मेरा हृदय प्रेम से भर रहा है, प्रेम की ही धड़कन है...क्यों न उठाकर वक्ष से लगा लूँ..........।'' चिन्तन में अतीत वर्तमान में बदल गया।

इसी बीच में गंगेश चुपचाप आकर उसके समीप बैठ गया था, परन्तु शिवसुन्दर को कुछ भी पता लगा नहीं। उसका चिन्तन चलता ही रहा। गंगेश उसके ऊपर झुका हुआ उसके मुख के

बदलते हुए भावों का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर रहा था। शिवसुन्दर विचार में तद्रूप हो गया। देश-काल से अनभिज्ञ बन गया। विचार में तदाकार बने हुए उसने अरुण को अपने हृदय से लगाने हेतु अपने हाथ फैलाये। उसके हाथ आगे बढ़े। गंगेश का सिर उसके हाथों में आ गया। उसने अपने वक्षस्थल से लगा लिया। गंगेश खिलखिलाकर हँस पड़ा। तब उसकी विचार-तन्द्रा भंग हुई और उसने आँखें खोल दी। उसने गंगेश का सिर छोड़ दिया। क्षणभर उसे स्थिति समझने में लगा और फिर वह हँस पड़ा। फिर उठकर बोला- "यह भी ठीक रहा! कब आये तुम!"

गंगेश अपना सिर सहलाते हुए बोला- "कितनी जोर से दबा दिया मेरा सिर! कभी का आया हूँ। कैसे लीन थे? किस प्रेयसी किस भाग्यशाली प्रिया के ध्यान में खोये थे, महाभाग! कौन आया कौन गया?- इसका ध्यान कैसे रहे? बस, ऐसी दक्षता से महाशयजी आपण पर बैठते होंगे?"- एक साँस में गंगेश इतना कह गया।

शिवसुन्दर ने हँसते हुए कहा- "कितना बोल गये तुम? और कितने आरोप लगा दिये- मुझ पर। प्रेयसी के ध्यान में कैसे लीन होता? अभी तक तो कोई प्रिया दृष्टि में ही नहीं आयी है। प्रिया की बात तो दूर रही। किसी बाला को भी अभी स्थिर दृष्टि से नहीं देखा तो प्रिया का ध्यान ही कहाँ से आता?"

जैसे चोर को तलाशने के लिये नगरगुप्तिक प्रश्न करता है, कुछ वैसे ही ढंग से गंगेश ने पूछा- "मैं तुम्हारे मुख के बदलते हुए भावों को बराबर देख रहा था। उन भावों से तो यही अनुमान होता है कि तुम किसी के प्रेमभाव में लीन थे! छिपाओ मत।"

"छिपाने जैसा है ही क्या, वयस्य (मित्र)!" अपना दाहिना हाथ गादी पर फटकारते हुए उसने कहा- "तुम्हारी बात अंशतः सही है। किसी प्रिया के नहीं, परन्तु किसी प्रिय के ध्यान में अवश्य तल्लीन हो गया था? वह प्रिय भी क्या, मात्र कुछ क्षणों का परिचित।"

"यह भी क्या उल्टी गंगा बहाने लगे?"- गंगेश ने आँखें फाड़कर आश्चर्य की मुद्रा में कहा- "कौन है- वह भाग्यशाली? - जरा सुनूँ भी तो।"

"वही नगरश्रेष्ठी का पुत्र अरुण।"

"हाँ, सुहृद!"-गंगेश ने उसकी बात को स्वीकार करते हुए कहा-"उसका व्यक्तित्व है तो प्रभावशाली और आकर्षक। किन्तु मुझे यह समझ में नहीं आया कि इतने सम्पन्न पिता का पुत्र और उसने वस्त्र कैसे पहन रखे थे और उसके पिता भी कैसे कि उसे कुछ नहीं कहते।"

"सखे! सादगी तो सफल जीवन की कुँजी है। मुझे लगता है, वह विचारशील युवक है। उसकी सादगी उसके विचार-सौन्दर्य को ही व्यक्त कर रही थी"-शिवसुन्दर अरुण के विचार के उज्ज्वल पक्ष का मूल्यांकन कर रहा था-"और मैं उन पिताओं को महान् समझता हूँ कि जो अपने पुत्र के उच्च विचारों का बहुमान करते हैं। ऐसे पिता के पुत्र ही

महानता के राही होते हैं।'' फिर एक निमिष रुककर वह बोला- ''पर, सुहृद्! उसके उन साधारण वस्त्रों में भी उसका तरुण सौन्दर्य ऐसे निखर रहा था- मानो मकरध्वज ही हो।''

शिवसुन्दर ने कहा- ''अरुण का दर्शन मुझे पुण्य-फल सा ही लगा। काश, वह हमारा सुहृद होता।''

''वह है सम्पन्न पिता का पुत्र! कहाँ से होगा, हमारा मित्र?''

''ऐसी कोई बात नहीं लगती''- शिवसुन्दर ने उसे पूर्व की बात स्मरण करवाते हुए कहा- ''तुम्हें ध्यान हो तो हम और तुम मात्र दो जने ही सुन सके इतने धीमे स्वर से उसने बात कही थी- एक!''

गंगेश ने कहा-''हाँ, हाँ! बिल्कुल याद है। जैसे अति सयाना व्यक्ति किसी को राय देता है, वैसे ढंग से उसने फुसफुसाते हुए कहा था कि धर्मकला सब कला को जीत लेती है।''

''गंगेश! मुझे उस दिन से ऐसा लगा कि भले ही उसने स्थानीय कलायतन में अध्ययन किया, परन्तु वह हम से कम विज्ञ नहीं। वह तत्काल गीत बना लेता है। उसका कण्ठ-माधुर्य अद्वितीय है। उसके स्वर का उस दिन कैसा प्रभाव छा गया था।''

गंगेश उसकी ये बातें सुनकर हँस पड़ा। वह बोला- ''बड़ी विचित्र बातें हैं, तुम्हारी! मानो उसके व्यवहार का नशा-छा गया है तुम पर और तुम उसकी एक-एक बात का इस प्रकार निरीक्षण कर रहे हो कि जैसे कोई विवाह का अभिलाषी वर अपनी भावी वधू का या कन्या भावी वर का निरीक्षण करती है। तेरे पिता से कहना पड़ेगा कि शिवसुन्दर के लिये जल्दी ही वधू की तलाश करो।''

शिवसुन्दर गंगेश की बात सुनकर कुछ झेंप सा गया, परन्तु वह बोला- ''मित्र! कैसी बात करते हो, तुम। क्या तुम मुझे याद नहीं आते हो? अभी कुछ देर पहले ही तुम्हें याद कर रहा था। तुम्हारे साथ भोगे हुए आनन्द के क्षणों को याद कर रहा था और याद कर रहा था- कलायतन में व्यतीत किये हुए दिवसों को। मनुष्य वर्तमान में जीता है, भविष्य के स्वप्न देखता है और अतीत के सुख-दुःख का स्मरण करके रोमांचित होता है। अतीत की यादें भी तो एक थाती हैं।''

गंगेश ने उपहास करते हुए कहा- ''यह सब पागलपन वहीं तक है, जब तक किसी से पाणिग्रहण नहीं हुआ।''

''यह तो संसार का क्रम ही है, भाई!''

''गृहस्थ बनने के बाद उत्तरदायित्व बढ़ता जाता है। अपने स्वयं के संसार की वृद्धि होती है। चिन्ता का विस्तार होता है। ऐसी स्थिति में कहाँ मित्र याद रहेंगे और कहाँ इन कोमल कान्त कल्पनाओं को अवकाश रहेगा? जीवन के संघर्षों में ये भावनाएँ विलीन हो

जायेंगी। यह कठोर सत्य है, बन्धु!''

''तुम्हारी सब बातें किसी अपेक्षा से सही हैं। परन्तु बन्धु! यह भी मत भूलो कि हृदय हृदय ही है। यदि व्यक्ति हृदय की सरसता को आयु-वृद्धि के साथ ही निकाल फेंकता है तो उसका जीवन झुलसती मरुभूमि जैसा ही हो जाता है''- शिवसुन्दर फिर कल्पना-लोक में खोता हुआ सा बोला-''लो, इतनी निरन्तर वार्ता-निर्झरी में भी मेरे सामने अरुण का मुख उभर रहा है। मैं देख रहा हूँ वह कलाचार्य को प्रणाम कर रहा है, और वे गद्गद्-से भाव-विभोर होकर उसे मंगल आशीर्वाद दे रहे हैं।''

गंगेश को उस दिन कलाचार्य की यह बात अच्छी नहीं लगी थी। अतः वह भड़ककर बोला- ''यह भी बात कैसी रही? अरुण कैसा स्तेन (चोर) निकला? अपना अधिकार भी वह हड़प गया।''

''जो भी हो''- शिवसुन्दर ने उसकी बात की उपेक्षा करते हुए कहा-''मुझे ऐसा लगता है कि अरुण की मैत्री अपने लिए सुखद होगी?''

''अच्छा! तुम्हारे पिताजी कहाँ गये हैं?''- गंगेश ने विषय को बदला। तब शिवसुन्दर ने कहा- ''वे गये हैं- उपाश्रय। अपने कलायतन जाने के बाद हमारे एक आचार्य महाराज वृद्धत्व के कारण यहीं विराज गए हैं। अपने जाने के बाद यहाँ विशेष घटनाएँ हुई हैं। मेरा मन भी वहाँ जाने का होता है। आचार्यश्री वृद्ध होते हुए भी मंगलमूर्ति हैं। परन्तु मुझे धर्मज्ञान न होने के कारण उनके पास जाने में लज्जा आती है।'' ''इसमें लज्जा की क्या बात? गर्भ में से ही कोई सब कुछ सीखकर नहीं आता है। अपने गुरु के पास जाने में क्या संकोच?'' **(क्रमशः)**

संलेखना की विधि

श्री नवरतन डागा

संथारा करने वाला पहले संथारे का स्थान निश्चित करे। वह स्थान निर्दोष जीव-जन्तु और कोलाहल से रहित तथा शान्त हो। फिर उच्चार-प्रस्रवण भूमि (बड़ीनीत, लघुनीत परठने का स्थान) देखकर निर्धारित करे। इसके बाद संथारे की भूमि का प्रमार्जन करे और दर्भ आदि का संथारा बिछाकर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठे और इर्यापथिकी-गमनागमन का प्रतिक्रमण करे। फिर दोनों हाथ जोड़कर सिद्ध भगवान एवं अरिहन्त भगवान की 'नमोत्थुणं' के पाठ से स्तुति करे। इसके बाद गुरुदेव को वंदना करके चतुर्विध तीर्थ से क्षमायाचना करते हुए संसार के सभी प्राणियों से क्षमायाचना करे। तत्पश्चात् अपने पूर्व के व्रतों का स्मरण करे और उनमें लगे हुए दोषों की आलोचना करे। इसके बाद अट्ठारह पाप और चारों आहारों का जीवनभर के लिए त्याग कर दे।

-पूर्व महामंत्री, अ.भा.श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, घोड़ों का चौक, जोधपुर(राज.)

युवा-स्तम्भ

जन्म मरण की जड़ें : चार कषाय

श्री रमेशचन्द्र कनेरिया

आत्मगुणों को कृश करने वाले भाव कषाय कहलाते हैं। ये चार हैं- क्रोध, मान, माया और लोभ। व्यक्ति के जीवन में क्रोधादि कषाय ज्ञानावरण, दर्शनावरणादि कर्मों को सुदृढ़ करते हैं, जिससे वह मूढ एवं अज्ञानी बना रहता है। इसके विपरीत कषायों के क्षय होने से ज्ञानावरणादि का क्षय होता है, आत्मगुण प्रकट होते हैं तथा वह ज्ञानी बनता है। इस प्रकार ज्ञानी एवं अज्ञानी होने में कषायों की महती भूमिका है।

दशवैकालिक सूत्र में कषाय के सम्बन्ध में अध्ययन 8 में कहा है कि-

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स।।

अर्थात् क्रोध और मान ये दोनों क्षमा और विनय से शान्त न किये हों, और माया व लोभ, ये दोनों सरलता और सन्तोष रूपी सद्गुणों को धारण न करने से बढ़ रहे हों तो आत्मा को मलिन बनाने वाले ये चारों कषाय पुनर्जन्म रूपी वृक्ष की जड़ों को सींचते हैं।

प्रज्ञापना-सूत्र के 14 वें पद में कषाय के 5200 भंगों की व्याख्या आती है। भगवान ने कषाय चार प्रकार की बतलायी हैं- 1. क्रोध कषाय, 2. मान कषाय, 3. माया कषाय और 4. लोभ कषाय। एक अपेक्षा से इन्हें इस प्रकार भी विभक्त किया जाता है-

1. **अनंतानुबंधी-** क्रोध, मान, माया और लोभ।
2. **अप्रत्याख्यानी-** क्रोध, मान, माया और लोभ।
3. **प्रत्याख्यानावरणीय-** क्रोध, मान, माया और लोभ।
4. **संज्वलन-** क्रोध, मान, माया और लोभ।

कर्मबन्ध का मूल कारण कषाय और योग होते हैं। स्वतन्त्र कषाय कुछ नहीं कर सकते। जीव के कषाय भाव से ही कर्मों की स्थिति और अनुभाग बन्ध होता है। कषाय भाव में मन, वचन, काया के योगों की नियमा होती है, किन्तु योगों में कषायों की भजना होती है। कषाय से आत्मा मैली और अशुभ बनती है।

विषय और कषाय भव-परम्परा बढ़ाने वाले हैं। इनका उन्मूलन करके ही जीव विशुद्ध परमात्म-पद को प्राप्त कर सकता है। यही आत्मा का विशुद्ध स्वरूप है। यों कह सकते हैं

कि कषाय से सर्वथा छुटकारा पा लेने का नाम ही मोक्ष है। इसीलिए सूत्रकृतांग सूत्र के अध्ययन 6 में बताया है-

"कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं च अज्झत्थदोसा।
एयाणि वंता अरहा महेसी, ण कुव्वइ पावं ण कारवेइ।।"

अर्थात् अर्हंत क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायों को जीतकर स्वयं न तो पाप करते हैं और न दूसरों से कराते हैं और न करने वालों का अनुमोदन ही करते हैं। वे इन चारों कषायों का वमन कर देते हैं, इसीलिए मोक्ष में जाते हैं।

भगवान ने कषायों की उत्पत्ति के चार कारण बतलाये हैं-

1. **क्षेत्र**- यानी खुली जमीन, कुँआ, खेत आदि।

2. **वास्तु**- यानी ढकी जमीन, मकान, बंगला आदि।

3. **शरीर**- यानी द्विपद-चतुष्पद, दास-दासी, गाय-भैंसादि।

4. **उपधि**- यानी वस्त्र, आभूषण, भण्डोपकरण आदि।

धर्म का पुरुषार्थ करने से यदि कषायें बढ़ती हैं तो वह किया गया पुरुषार्थ निरर्थक है। जो कषायों के विजेता होते है, वे ही धर्म के ज्ञाता और सरल होते हैं। संसार से अनन्त आत्माएँ मोक्ष में चली गयी हैं, पर अभी हम यहीं रह गये। क्योंकि हमने अभी तक कषायों पर विजय प्राप्त नहीं की है। इसीलिए प्रत्येक प्राणी को कषायों का त्याग कर, अपने जीवन में बदलाव लाने का सत्प्रयास करना चाहिए। आचारांग सूत्र के चौथे अध्ययन के उद्देशक तीसरे में कषाय विजेता को 'मुयच्चा' से सम्बोधित किया है। साथ ही कषाय आत्मा को सम्यक् तप से कृश, जीर्ण करने का निर्देश देते हुए कहा है- "कसेहि अप्पाणं जरेहि अप्पाणं।" अर्थात् तप के द्वारा इन्द्रिय विषय-कषायों को कृश कर डालो।

मानव जीवन की सफलता में सबसे बड़ी बाधा क्रोध की है। क्योंकि क्रोधी जीव नरक आदि स्थानों में भयंकर दुःखों को प्राप्त करता है। किसी ने कहा भी है-

"क्रोधी अवगुण पाँच है, घटे प्रीत, तजे अन्न।
अशुभ बंधे, लोही जले, चूके सत्य वचन।।"

अतः क्रोध नहीं करना ही बिना तपस्या की निर्जरा है। हमारे जीवन में प्रत्येक क्षण साधना की सीढ़ी बन कर आते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि साधक उसका उपयोग कैसे करता है। सती चन्दनबालाजी के लिए मूला सेठानी, गजसुकुमालमुनि के लिए सोमिल ब्राह्मण, सीता महासती के लिए रावण आदि कई उदाहरण आगम में आते हैं। इन सबने अपने जीवन को कषाय पर विजय प्राप्त करके ही ऊँचा बनाया है।

भगवान ने क्रोध के स्थान, कारण और प्रकार इस तरह बताये हैं- 1. अपने ऊपर क्रोध करे। (आत्म प्रतिष्ठित), 2. दूसरों के ऊपर क्रोध करे। (पर प्रतिष्ठित), 3. तदुभय, दोनों के ऊपर क्रोध करे। (तदुभय प्रतिष्ठित), 4. निरर्थक क्रोध करे। (अप्रतिष्ठित), 5. खेत के लिए करे, 6. वास्तु के लिए करे, 7. शरीर के लिए करे, 8. उपधि के लिए करे, 9. जानते हुए करे, 10. अजानते हुए करे, 11. उपशांत, 12. अनुपशान्त, 13. अनन्तानुबन्धी, 14. अप्रत्याख्यानी, 15. प्रत्याख्यानी, 16. संज्वलन क्रोध करे।

क्रोध करने के कुछ कारण इस प्रकार हो सकते हैं-

1. **अहंकार के कारण-** यह क्रोध का जनक है। जब व्यक्ति अपने आपको बड़ा समझता है तो क्रोध आता है। यह अहंकार को कम करके ही दूर किया जा सकता है। अहंकार को घटाने की साधना का सूत्र है कि- "मुझ पर सबका अधिकार है, किन्तु मेरा किसी पर अधिकार नहीं है।" यह सूत्र जीवन में उतरते ही क्रोध पर नियन्त्रण होना प्रारम्भ हो जाता है।
2. **अपेक्षा के कारण-** अपेक्षित व्यवहार में जब कोई खरा नहीं उतरता है तो क्रोध आता है। इसका यही उपाय है कि हम किसी से कोई अपेक्षा न रखें।
3. **पर-दोष दर्शन-** दूसरों के दोष देखने से भी क्रोध आता है। इसका उपाय यह है कि हम पर-दोष न देखकर स्वयं की गलतियों को देखना प्रारम्भ कर दें। धीरे-धीरे क्रोध कम होता चला जायेगा।
4. **दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से-** इस कर्म के उदय से जीव को करने योग्य और नहीं करने योग्य का विवेक नहीं रहता है। वह किसी की भी बात सहन नहीं करता है। अन्दर ही अन्दर जलता रहता है। इसका उपाय इसको शमन करके ही हो सकता है।
5. **ग्राहक दृष्टि-** कषाय उत्पन्न होने के निमित्त तो बहुत छोटे होते हैं, किन्तु उनके परिणाम भयंकर होते हैं। जैसे- द्रौपदी-दुर्योधन की वार्ता। इसका यही उपाय है कि हम निमित्त उपस्थित होने पर उसके ग्राहक न बनें।

इसके अतिरिक्त अन्य कई कारण कषाय उत्पन्न होने के हो सकते हैं। हमें तो इनके उत्पन्न होने पर, होने वाले दुष्परिणामों को जानकर इनका त्याग कर परम सुखी बनने की ओर अग्रसर होना चाहिए। यदि यह लक्ष्य रखकर साधक अपनी साधना करेगा तो उसका कदम मोक्ष-मार्ग की ओर अभिमुख हो सकेगा। अतः साधक जन्म-मरण की जड़ों को सींचने वाली कषायों से सदैव बचने का प्रयास करे।

-सेवानिवृत्त प्रधानाध्यपक, एम.पी.बी. 115, महावीरनगर प्रथम, कोटा-324005 (राज.)

काव्य

अनुप्रेक्षा बावनी

श्रद्धेय श्री जितेन्द्रमुनिजी म.सा.

(तर्जः- गजेन्द्र चालीसा/हनुमान चालीसा)

दोहा

परम प्रतापी है गुरु, उनको करूँ प्रणाम।
सत्य धर्म से सिद्ध हो, अपना आतम काम।।
तन मन धन अर्पण सभी, चाहूँ सिद्धि धाम।
भटक-भटक कर थक गया, पाऊँ अब विश्राम।।

चौपाई

अनित्य भावना

इस जग में नहीं शाश्वत कोई, आना जाना अनादि से होई।
अब तो मोह नींद से जागें, अनासक्त बन कर्म में लागें।।1।।

अशरण भावना

धन दौलत से भरा खजाना, छोड़ के चेतन हुआ रवाना।
ज़ग में कोई नित्य नहीं है, सुनले कड़वा सत्य यही है।।2।।
धन वैभव और कुटुम्ब कबीला, तन भी सुन्दर छैल छबीला।
शरण नहीं कोई छोड़ भुलावा, आए जब यमराज बुलावा।।3।।

एकत्व भावना

भव-भव भटका जीव अकेला, हुआ न आतम से कोई मेला।
चार गति में चक्कर खाया, चौबीस दण्डक दुःखड़ा पाया।।4।।
आए अकेले जाए अकेले, कितने खेल अनोखे खेले।
एक-एक संयोग बढ़ाया, आई मौत तो हुआ पराया।।5।।

संसार भावना

कौन गति तुमने नहीं पाई, सबमें मिथ्या मति रचाई।
अब तक सम्यक् बोध न पाया, फिर-फिर कर संसार बढ़ाया।।6।।
गति तिर्यंच में जब तुम आये, आत्महित कुछ नहीं कर पाये।
क्या बतलाएँ लेखा-जोखा, खाया चारों तरफ से धोखा।।7।।

कभी नमक कभी बना था पत्थर, पृथ्वी में खाया बहु चक्कर।
कभी ओस बन मिला था सागर, पानी में दुःख पाया आकर।।8।।
अग्नि बन सर्वस्व जलाया, वायु बन उत्पात मचाया।
बीज निगोद लीलन व फूलन, काल अनन्त बिताया जीवन।।9।।
कभी कीट कभी बना था कुंजर, कभी देव देवों में सुन्दर।
कभी नरक के दुःखड़े झेले, पाये दुःख हर योनि अकेले।।10।।
कभी एकेन्द्रिय कभी बेइन्द्रिय, कभी तेइन्द्रिय कभी चउरिन्द्रिय।
पंचेन्द्रिय तक यात्रा कीनी, यात्रा दुःख भरी थी बहु झीनी।।11।।
भौतिक वैभव खूब कमाया, फिर भी चैन कभी नहीं पाया।
काल ने सब पर पानी फैरा, छोड़ चले सब करके बिखेरा।।12।।
रुच-रुच हिंसा कर मुस्काया, जीव घात कर नहीं पछताया।
निंद्य आहार से पेट भराया, तूने पाप ही पाप कमाया।।13।।
महानरक में जन्म को पाया, छेदन-भेदन खूब कराया।
जलती आग में तुम्हें पकाया, रुदन किया तो तुम्हें चिढ़ाया।।14।।
फिर भी बना भोग का कीड़ा, इसीलिए पाई अति पीड़ा।
आगे की पीड़ा नहीं जानी, करता पाप बना अज्ञानी।।15।।
आई कभी उदय पुण्याई, जन्म लिया सुरपुर के माहि।
देखी जब सुरपुर की झांकी, मानो भोग नहीं कोई बाकी।।16।।
सुन्दर काया तूने पाई, देख देवियाँ भी ललचाई।
वैभव की नहीं कोई सानी, भोग प्रधान वहाँ जिन्दगानी।।17।।
हीरा-पन्ना, माणक-मोती, जगमग थी रत्नों की ज्योति।
सुर वैभव लखकर बहकाया, जी भर के इन्द्रिय सुख पाया।।18।।
सुरपति बनकर शासन पाया, बैठ सिंहासन हुक्म चलाया।
कभी देवी कभी रतन चुराया, वज्र पड़ा तब अति घबराया।।19।।
आखिर कष्ट सहा छः मासा, सुख में था दुःख का ही वासा।
यही स्वर्ग की सुनो कहानी, तीर्थंकर ने कही जुबानी।।20।।

अन्यत्व भावना

जन्म-मरण हर बार है पाता, ज्ञान से छोड़ो इनका नाता।
जड़ और चेतन भिन्न है जानो, प्रभु वाणी अनुभव से मानो।।21।।
जड़ भी होता है उपयोगी, पर सीमा इसकी भी होगी।

इनका भेद नहीं समझोगे, तब तक पर में भटके रहोगे।।22।।
दिखता तो सब ही पुद्गल है, काया माया सब चंचल है।
पुद्गल लीला सब जग दिखती, यही जीव को पग-पग ठगती।।23।।
अणु-परमाणु स्कन्ध बनाई, अपने से पर है सच्चाई।
लोक भरा है द्रव्य से सारा, शब्द रूप गन्धादि पसारा।।24।।
इस जगती में जो कुछ दिखता, सड़ता-गलता फिर वह मिटता।
निज पर नित्य नज़र है रखनी, कसर नहीं कुछ भी हो सुजानी।।25।।
पुद्गल गुण को जान विनाशक, बन जाएगा झट आराधक।
नर तन चौला मिलना दुर्लभ, देवों को भी लगता वल्लभ।।26।।

अशुचि भावना

भेद ज्ञान अपनालो प्यारे, जीते जी हो जाओ न्यारे।
तन नहीं अपना मन नहीं अपना, शुद्ध चिन्मय चेतन ही अपना।।27।।
क्यों तू देह पे व्यर्थ फिदा है, क्यों तू नेह में उलझा सदा है।
किसी किस्म की जिस्म हो भाई, आखिर होगी उसकी जुदाई।।28।।
यह कर लूँगा वह कर लूँगा, मनोकामना पूर्ण करूँगा।
चित्त धरता पगले पुद्गल में, कल क्या होगा अगले पल में।।29।।
कितनी अर्थी उठती देखी, फिर भी करता अपनी शेखी।
मरेगा जग में कोई दूजा, होगी मेरी निशदिन पूजा।।30।।
ऐसा भरम कभी ना पालें, हर दम अपने भाव संभालें।
मद के रंग में कभी न झूलें, प्रभु को एक पल भी नहीं भूलें।।31।।
कंचन काया दिखती सलौनी, पर निश्चय में देह घिनौनी।
भीतर में है अशुचि शरीरा, राजा हो या रंक फकीरा।।32।।

आश्रव भावना

राग-द्वेष से बन्धन होता, कर्म बीज फिर क्यों तू बोता।
आश्रव के अब जड़ दें ताले, निज कर्तव्य नहीं अब टालें।।33।।
मन घोड़ा चिन्तन है कोड़ा, लगें सतत हटे सब रोड़ा।
बनकर सजग कर्म को तोड़ें, सिद्धों के पथ पर हम दौड़ें।।34।।

संवर भावना

संवर भावना जो कोई भाये, आश्रव नाला तब रुक जाए।
व्रत नियम उर में हम धारें, तप संयम से आत्म संवारे।।35।।

जैसे दीमक लकड़ी खाये, सूर्य चन्द्र को राहु छिपाए।
वैसे कर्म आत्म पर छाए, करें दूर पौरुष दिखलायें।।36।।

निर्जरा भावना

कर्म की रज को दूर हटाओ, मोक्ष मार्ग पर अब चढ़ जाओ।
लकड़ी संग ज्यों लोहा तरता, त्यों भवीजन भव जल से तरता।।37।।
कर्म वर्गणा जग में फैली, कषाय से आतम ने झेली।
झेल-झेल वो बन गई मैली, दुःख भोगे अब आत्म अकेली।।38।।
मृग तृष्णा से यह जग जलता, पग-पग एक दूजे को छलता।
घाणी बैल जो नित प्रति दौड़े, माथा खातिर तन को तोड़े।।39।।
निर्धन धन बिन है दुःखियारा, धनी लालची बना बेचारा।
इस तृष्णा का अंत नहीं है, नभ सम और न छोर कहीं है।।40।।
काल ने सब पर पानी फेरा, छोड़ चले कर तेरा मेरा।
फरियादें सब धूल में खोई, अरमानों की राख है होई।।41।।

लोक भावना

बड़े-बड़े मानुष यहाँ आए, सुख में जीवन खूब बिताये।
टिककर कोई नहीं रहने पाया, क्रूर काल ने सबको खाया।।42।।
तेरी नीयत जगत ने जानी, फिर भी उसको ढ़कने की ठानी।
छिप-छिप कितने पाप कमाए, लाख उपाय से छिप नहीं पाए।।43।।
घुमड़-घुमड़ ज्यों बादल आए, समय एक-सा रह नहीं पाए।
कभी सर्द कभी गरम अंगारे, कभी बरसती मस्त फुहारें।।44।।
संयम मारग अच्छा माना, प्रभु प्ररूपित धर्म पिछाना।
संयम पथ पर कदम बढ़ाए, पर प्रमाद के काज सुहाए।।45।।
संयम का पथ उत्तम मानो, तिरते शुभ कर्मों से जानो।
प्रमाद सभी जीवन में त्यागें, प्रभु बातें सुन आतम जागे।।46।।
संभव है ये कारज सारे, क्यों भटके फिर मारे-मारे।
हरदम खुश रहकर मुस्काना, सार रूप में यह समझाना।।47।।

बोधिदुर्लभ भावना

चाहे कोई भले हो भाई, ईर्ष्या द्वेष न करें बुराई।
दिल में भरले तू नरमाई, पा लें तू ऐसी निपुणाई।।48।।
दीन दुःखी सन्मुख दिख जाए, तब करुणा से मन भर जाए।

समझूँ सारी पीर पराई, भूलूँ निज दुःख करूँ भलाई।।49।।
अधिक कामना दुःख को बढ़ाए, सदा सुखी संतोषी कहाए।
बाहर में तो कुछ न धरा है, निज में सुख भरपूर भरा है।।50।।

धर्म भावना

गर बनना है परमानन्दी, पुद्गल सुख में मत बन बन्दी।
अतुल शौर्य है तुझमें समाया, बहुत धैर्य भी तुझमें बसाया।।51।।
प्रतिक्रिया नहीं कीजे कोई, सदा आभारी पर के भी होई।
मुश्किल चाहे कैसी आए, समता मन में सदा बसाए।।52।।

दोहा

गज सम आतम मस्ती हो, हीरे सी दृढ़ता होय।
मान नहीं मन में चढ़े, विनय सरलता होय।।
हृदय की है माँग यही, कर्म बंध ना होय।
राग-द्वेष को जीत लूँ, शाश्वत सुख संजोय।।

-संकलन : श्री कमलेश मेहता, कार्यालय प्रभारी,
श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर (राज.)

संयम शिरोमणि

श्री कोमल जैन

सं- संयम समाचारी, अनुशासन दृढ़ता का।
सभी से, व्यवहार करते हैं मृदुता का।।
य- यतनापूर्वक क्रिया दिखती है जीवन में।
यशस्वी है जिनशासन के उपवन में।।
म- मधुर है आपका, प्रवचन प्रवाह।
मन सुनकर करता है वाह-वाह।।
दि- दिव्य-भव्य-व्यक्तित्व को करते हैं नमन।
दिन-रात प्रभु में, प्रभु वाणी में रहते हैं निमग्न।।
व- वर्णन कहाँ तक करें गुणों का।
वरदान हैं आप संयम के प्राणों का।।
स- सत्यान्वेषी बन प्रभु पथ पर डग भरते।
सहिष्णुता के गुण से संघ नभ में गुरु हीरा चमकते।।

-5/90, गाँधी नगर, जयपुर-302001 (राज.)

English-Section

The Eternal Message of Lord Mahavira

Sh. Dulichand Jain

Jain Tradition

Jainism is one of the oldest religious traditions of the world. Historians say that it is at least 5000 years old. A great generation of Tirthankaras, Acharyas, saints and scholars enriched this tradition. Lord Mahavira was the twenty-fourth Tirthankara of the present era. He was the great propounder of great Jain religion. He realized his true self and attained omniscience by practising rigorous austerities and penances. A glimpse into his life shows that he was an embodiment of non-violence and compassion. Although Mahavira (599 B.C.-527 B.C.), preached 2500 years ago, his teachings bear special significance for the spiritual advancement of mankind today. His message is full of pragmatic optimism, self-reliance, self-discipline and self-purification.

Contribution of Jain Faith

The contribution of Jain faith to Indian thought and life has been very significant. Actually, vegetarianism as a habit prevailing through the Indian continent, practised by a large majority, is evidence of Jain influence. Indian art, literature, architecture, painting and sculpture as also every other aspect of life have been greatly influenced by Jain thoughts. Jains are noted for the catholicity of their outlook and broadmindedness. The other significant contribution of Jainism is its harmonious and peaceful approach to life. The central themes of the teachings of Lord Mahavira are non-violence, non-absolutism and non-possession.

Futility of Material Comforts

Lord Mahavira says that all material comforts and pleasures can never satisfy anybody and ensure true happiness. He preached the doctrine of non-possession to limit the desires for worldly pursuits. He

says, 'It is owing to attachment that a person commits violence, tells lies, commits theft, indulges in sex and develops a yearning for unlimited hoardings. Possessiveness and greed are the main causes which create tension in the life of an individual and also in society at large. Hence, an aspirant should limit his possessions and desires to the minimum.

Heritage of Jain Scriptures

The Teachings of Lord Mahavira are preserved in Jain scriptures, which have come down to us through a very rich tradition. The Tirthankaras preached and the Ganadharas gave a structure to those preachings in the Agamas. The Acharyas and saints protected and preserved them. These Agamas serve as the source for understanding Jain philosophy and culture and also Indian thought with way of life at that time. Mahavira's preachings are like the innumerable pearls of wisdom that are found in abundance in the limitless and unfathomable ocean of knowledge. In the words of the late Upadhaya Amarmuni. 'The Sutra literature of Jains is deeper than the deepest ocean in which innumerable divine pearls of wisdom are hidden. It is a great store-house of golden words. It is important not only for, the inspirtation it gives to tread the path of righteousness and spirituality but also for the message it gives for the harmonious development of family and social life. The aphorisms on moral and ethical progress are scattered here and there in all the Agamas, which lay a strong foundation for a peaceful and humanitarian world'.

-'Sahity-Ratna', 70, T.T.K. Road, Alwarpet, Chennai-600018 (T.N.)

सूचना

'संस्कारम्' पुस्तक मूल्य 150 रुपये में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल कार्यालय, बापू बाजार, जयपुर में उपलब्ध है। जिन महानुभावों को इस पुस्तक की आवश्यकता है, वे पुस्तक मूल्य + डाक व्यय देकर इसे मंगवा सकते हैं।

-विनयचन्द डागा, मंत्री, कार्यालय फोन- 0141-2575997

स्वास्थ्य-विज्ञान

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ क्यों विश्वसनीय?

डॉ. चंचलमल चोरडिया

क्या स्वास्थ्य हेतु समान मापदण्डों का निर्धारण संभव है ?

दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से एक जैसे नहीं हो सकते। उनके जीवन का लक्ष्य, प्राथमिकताएँ, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आवास एवं व्यवसाय का वातावरण तथा परिस्थितियाँ सभी भिन्न होती हैं। इसी तरह बाह्य रूप से कुछ लक्षणों में समानता होने के बावजूद किसी एक रोग के नाम से रोग को बताना कहाँ तक उचित है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय जैसे देखना, सुनना, बोलना, गंध लेना, स्पर्श करना, समझना आदि पर एक जैसी परिस्थितियों का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के अलग-अलग स्तर पर जीता है।

रोग के निदान हेतु जो भी रोगी से पूछा जाता है और रोगी अभिव्यक्त करता है अथवा जो यंत्रों एवं पेथालोजिकल रिपोर्ट के परीक्षण से प्राप्त होता है, वह सत्यांश ही होता है। अत: स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति को निदान और उपचार की यथार्थता के प्रति स्वयं की सजगता और विवेक आवश्यक होता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

प्रभावशाली स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियां व्यक्ति को स्वस्थ रखने एवं रोग का उपचार करते समय निम्न तथ्यों की उपेक्षा नहीं करती-

1. पूर्ण शरीर, मन और आत्मा को एक इकाई मानकर निदान और उपचार करती है, जिससे न केवल शरीर ही रोग मुक्त होता है अपितु मन सजग होता है और आत्मविकार भी दूर होते हैं।
2. पूर्ण शरीर का निदान एवं उपचार करने से अप्रत्यक्ष, सहयोगी रोगों की उपेक्षा नहीं होती।
3. शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। भोजन, पानी, हवा, सूर्य के प्रकाश के सम्यक् उपयोग तथा आवश्यक श्रम एव विश्राम द्वारा शरीर की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग होता है।
4 उपचार पूर्णत: सहज, सरल, सस्ता, स्थायी, अहिंसक, दुष्प्रभावों से रहित एवं प्रभावशाली होता है।

5. शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम न हो, अपितु उसमें वृद्धि हो, इस हेतु प्राथमिकता और सजगता होने से वायरस और कीटाणु से व्यक्ति प्रभावित नहीं होता।

पशु जगत का उपचार कौन करता है?

जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ, तभी से स्वास्थ्य वैज्ञानिक एवं चिकित्सक इस प्रयास में व्यस्त हैं कि मानव रोग मुक्त जीवन कैसे जी सके? जबकि यथार्थता यह है कि इतनी प्रगति के बावजूद भी आज रोग और रोगियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है।

दुनियां में चेतनाशील प्राणियों में मानव का प्रतिशत तो एक से भी कम है, बाकी 99 प्रतिशत जीव अनादिकाल से सहज जीवन जी रहे हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार की चिकित्सा पद्धति का न तो कोई ज्ञान होता है और न अनुभवी चिकित्सकों का सान्निध्य ही मिलता है। क्या वे रोगी नहीं होते? रोग होने पर वे पुनः कैसे स्वस्थ होते हैं? दूसरी तरफ स्वच्छ वातावरण में रहने वाले, पौष्टिक आहार का सेवन करने वाले, शुद्ध निर्मल मिनरल वाटर पीने वाले भी रोगी हो जाते हैं, आखिर क्यों? इस पर बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सम्यक् चिन्तन आवश्यक है।

मानव शरीर में अच्छा तालमेल

मानव शरीर दुनिया की सर्वश्रेष्ठ मशीन है जो पाँच इन्द्रियों और मन जैसी अमूल्य सम्पदाओं से न केवल परिपूर्ण ही होती है, अपितु उसके सारे अंग-उपांग पूर्ण तालमेल एवं आपसी सहयोग व समन्वय से अपना-अपना कार्य करते हैं। यदि शरीर के किसी भी भाग में कोई तीक्ष्ण कांटा, सुई अथवा पिन चुभ जाये तो उस समय न तो आँख को अच्छे दृश्य देखना अच्छा लगता है और न कानों को मनपसन्द गीत सुनना। यहाँ तक कि दुनिया भर में चक्कर लगाने वाला हमारा चंचल मन क्षणमात्र के लिए अपना ध्यान वहाँ से हटाता नहीं है। जिस शरीर में इतना तालमेल और अनुशासन हो, क्या उस शरीर में कोई अकेला नामधारी रोग उत्पन्न हो सकता है?

शरीर में स्वयं की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता होती है

हमें चिन्तन करना होगा कि जो शरीर अपनी कोशिकाएं, रक्त, माँस, मज्जा, हड्डियाँ, चर्बी, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण स्वयं करता है, जिसे आधुनिक विकसित स्वास्थ्य विज्ञान पूरी कोशिश के बावजूद अभी तक नहीं बना सका, ऐसे स्वचालित, स्वनिर्मित, स्वनियन्त्रित शरीर में स्वयं के रोग को दूर करने की क्षमता न हो, यह कैसे संभव है? अनुभवी चिकित्सक एवं अच्छी से अच्छी दवा शरीर को अपना उपचार स्वयं करने की प्राकृतिक

विधि में सहायक मात्र होते हैं। शरीर के सहयोग के बिना सारे उपचार निष्क्रिय हो जाते हैं।

दुष्प्रभावों की उपेक्षा हानिकारक

अधिकांश व्यक्ति रोग होने में स्वयं की गलती को स्वीकार नहीं करते। इसी कारण रोग को समझे बिना, निदान के बारे में अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किये बिना, डॉक्टरों के पास पड़ने वाली भीड़ के अन्धानुकरण के कारण, चिकित्सा से भविष्य में होने वाले दुष्प्रभावों की उपेक्षा करते हुए अपने आपको डॉक्टरों की प्रयोगशाला बनाते प्रायः संकोच नहीं करते। वे इस बात का चिन्तन तक नहीं करते कि दवाओं के अधिक अथवा अनावश्यक सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण होने लगती है।

चिकित्सा में हिंसा को प्रोत्साहन अनुचित

आत्मा को अशुभकर्मों से भारी करने में सबसे ज्यादा कारण हिंसा, क्रूरता, निर्दयता का आचरण होता है। दुनियां में कोई भी जीव मरना नहीं चाहता। भले ही उसे न चाहते हुए भी मरना क्यों न पड़े। जीयो और जीने दो पर आधारित जीवनचर्या ही मानवता का प्रतीक होती है। अपने स्वार्थ के लिए अन्य जीवों को कष्ट पहुँचाना पाश्विकता का लक्षण है। हमें तो पिन अथवा सूई की चुभन भी सहन न हो, परन्तु अज्ञानवश पौष्टिकता एवं स्वाद, शिक्षा, दवाओं के निर्माण एवं परीक्षण अथवा उपचार आदि के लिए अन्य जीवों के साथ क्रूरता अथवा उनका वध करना या उन्हें परेशान और पीड़ित करना, स्वयं के लिए दुःखों, कष्टों, रोगों को आमंत्रण देना है। उन मूक बेजुबान, असहाय जीवों की बद्दुआएं, हृदय से निकली चीत्कारें उनको पीड़ित करने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वालों को कभी शान्त, सुखी एवं स्वस्थ नहीं रहने देती। भले ही पूर्व पुण्य के प्रभाव से स्वार्थी मानव को उसका तत्काल दुष्फल न भी मिले।

जब पूज्य पुरुषों का आशीर्वाद हमें शान्ति पहुँचा सकता है तो दुःखी प्राणी की आहें अपना प्रभाव क्यों नहीं दिखाएँगी, चिन्तन का प्रश्न है? क्या हिंसा द्वारा निर्मित और क्रूरता द्वारा परीक्षण की गई दवाओं द्वारा उपचार करवाने वालों को अशुभ कर्मों का बन्ध नहीं होता है? प्रकृति का दण्ड देने का विधान पूर्ण न्याय पर आधारित होता है। वहाँ देर भले ही हो सकती है, अंधेर नहीं हो सकती।

अतः जहां कोई विकल्प न हो और रोग सहनशक्ति के बाहर हो, उस अवस्था में लाचारीवश ही ऐसा उपचार लेकर प्रायश्चित्त किया जाता है। जो उचित नहीं है, ऐसा करने से शरीर तो कुछ समय के लिए स्वस्थ होता है, किन्तु आत्मा विकारी बन जाती है। यह आत्मविकृति शरीर में पुनः रोग उत्पन्न करती है। अतः हिंसा को प्रोत्साहन देकर आत्मा को

विकारी बनाने वाली चिकित्सा पद्धतियाँ पूर्ण रूप से प्रभावशाली कदापि नहीं हो सकती?

स्वावलम्बी चिकित्सा को प्रभावशाली बनाने हेतु रोगी से अपेक्षाएं

स्वावलंबी चिकित्सा पद्धति से उपचार करते समय रोगी को निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है-

1. रोग के कारणों को जानने एवं समझने की जिज्ञासा, परामर्श देने वाले चिकित्सक से निदान और उपचार के बारे में शंकाओं का निराकरण करना तथा स्वयं की भूमिका का सम्यक् चिन्तन कर उसके अनुरूप पुरुषार्थ करना।
2. रोगी की स्वस्थ होने की तीव्र उत्कण्ठा, दृढ़ इच्छाशक्ति, सजगता, निश्चय, मनोबल, सम्यक् श्रद्धा, तर्क पूर्ण चिन्तन होने के साथ दुष्प्रभावों के प्रति उपेक्षावृत्ति नहीं होनी चाहिए।
3. शरीर, मन एवं आत्मा की क्षमताओं का सम्यक् चिन्तन एवं प्राथमिकता के अनुसार उपयोग करना अर्थात् प्राण एवं प्राण-ऊर्जा के मूल स्रोत पर्याप्तियों का दुरुपयोग न करना।
4. आत्मबल बढ़ाने हेतु नियमित प्रार्थना, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग एवं तप करना। प्राण और पर्याप्तियों के संयम का अभ्यास करना।
5. मन, वचन और काया पर यथासंभव संयम रखना।
6. प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा, मैत्री एवं प्रेम का भाव रखना तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उन पर क्रूरता, अत्याचार, निर्दयता, हिंसा आदि का व्यवहार न तो स्वयं करना और न करने वालों को सहयोग देना।
7. उपचार में नियमितता, निरन्तरता, समयबद्धता, एकाग्रता एवं स्वयं की भागीदारी की उपेक्षा नहीं करना।

रोगी जितना-जितना उपर्युक्त नियमों का पालन करेगा, उतना जल्दी ही वह रोग-मुक्त हो जायेगा। यदि वह स्वस्थ है तो रोग उसको परेशान नहीं करेगा। उपर्युक्त सारी बातें व्यक्ति के स्वयं के नियंत्रण में होती हैं।

स्वावलम्बी चिकित्सा क्यों प्रभावशाली?

स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा-पद्धतियाँ रोग के मूल कारणों को दूर करती है। शरीर, मन और आत्मा में तालमेल एवं सन्तुलन स्थापित करती है। शरीर की क्षमताओं और उसके अनुरूप आवश्यकताओं में सन्तुलन रखती है। स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियां व्यक्ति में धैर्य, सहनशीलता, सजगता, विवेक, स्वदोष दृष्टि एवं आत्म-विश्वास विकसित करती है।

व्यक्ति रोग तो स्वयं पैदा करता है, परन्तु उसे दवा और डॉक्टर से ठीक करवाना चाहता है। प्रकृति का सनातन सिद्धान्त है कि जहाँ समस्या होती है उसका समाधान उसी स्थान पर अवश्य होता है। अत: जो रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं उनका उपचार शरीर में अवश्य होना चाहिये। शरीर का विवेकपूर्ण एवं सजगता के साथ उपयोग करने की विधि स्वावलम्बी जीवन की आधारशिला होती है। मानव की क्षमता, समझ और विवेक जागृत करना उसका उद्देश्य होता है। स्वावलम्बी चिकित्सा में निदान और उपचार में रोगी की भागीदारी एवं सजगता प्रमुख होती है। अत: रोगी उपचार से होने वाले सूक्ष्मतम प्रभावों के प्रति अधिक सजग रहता है, जिससे दुष्प्रभावों की संभावना प्राय: नहीं रहती। ये उपचार बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-अमीर, शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न रखने वाला साधारण व्यक्ति भी आत्मविश्वास से चिकित्सक के परामर्श से स्वयं कर सकता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ हिंसा पर नहीं अहिंसा पर, विषमता पर नहीं समता पर, साधनों पर नहीं साधना पर, परावलम्बन पर नहीं स्वावलम्बन पर, क्षणिक राहत पर नहीं, अपितु अन्तिम प्रभावशाली स्थायी परिणामों पर आधारित होती हैं। रोग के लक्षणों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को दूर करती हैं। शरीर, मन और आत्मा में संतुलन और तालमेल स्थापित करती हैं। जो जितना महत्त्वपूर्ण होता है, उसको उसकी क्षमता के अनुरूप महत्त्व एवं प्राथमिकता देती हैं। स्वस्थ जीवन जीने हेतु जो अनावश्यक, अनुपयोगी प्रवृत्तियाँ हैं, उन पर नियंत्रण रखने हेतु सचेत करती हैं। इस प्रकार आधि, व्याधि और उपाधि के संतुलन से समाधि, शांति और स्वस्थता शीघ्र प्राप्त होती है। अत: स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक प्रभावशाली होती हैं। साधन, साध्य एवं सामग्री तीनों पवित्र होते हैं। उपचार से पूर्व रोगी उपचार से पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति पूर्ण सावधान रहता है और उसका उपचार अंधेरे में न होने से वह गलत एवं हिंसक दवाओं के सेवन से अपने आपको सहज बचा लेता है। अत: जो चिकित्सा पद्धतियाँ जितनी अधिक स्वावलम्बी होती हैं, रोगी की उसमें उतनी ही अधिक सजगता एवं भागीदारी होने से वे पद्धतियाँ उतनी ही अधिक प्रभावशाली होती हैं।

-चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 (राज.)

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealthzone.in

स्वास्थ्य-आलेख प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता

जिनवाणी के इस अंक में प्रकाशित 'स्वास्थ्य-विज्ञान' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित उपर्युक्त आलेख पर कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं, आप इनका उत्तर **15 नवम्बर 2015** तक डॉ चंचलमल जी चोरडिया के उपर्युक्त पते पर अपने फोन नं., ई-मेल एवं डाक पते सहित सीधे

प्रेषित कर सकते हैं। विलम्ब से प्राप्त उत्तरों को प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किया जाएगा। इस प्रतियोगिता में किसी भी वय का व्यक्ति भाग ले सकता है। सर्वाधिक अंक प्राप्तकर्ताओं को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार के अन्तर्गत 1000/-, 750/- एवं 500/- की राशि प्रेषित की जाएगी।

प्रश्न:-

1. उपचार में दुष्प्रभावों की उपेक्षा क्यों हानिकारक है?
2. उपचार हेतु कृत हिंसा स्वयं के लिए रोगों का आमन्त्रण क्यों बनती है?
3. स्वावलम्बी उपचार हेतु रोगी को क्या ध्यान रखना चाहिए?
4. स्वावलम्बी चिकित्सा अन्य उपचारों से क्यों अधिक प्रभावशाली है?
5. क्या शरीर में स्वयं की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता होती है?
6. क्या सब रोगियों के लिए समान मापदण्ड संभव है?
7. क्या शरीर में आधुनिक चिकित्सकों द्वारा सुनिश्चित किया गया अकेला रोग शरीर में हो सकता है?

सम्पादकीय का शेषांश

पर्युषण के पश्चात् सामूहिक पारणे का कार्यक्रम हुआ, जिसमें सभी तपस्वियों का अभिनन्दन कर पारणा कराया जाता है। इसमें प्रायः जौहरी परिवार सक्रिय हैं। यह पारणक न्यूजर्सी में था। श्री आनन्दजी नाहर, डॉ. रजनीकान्त शाह, श्री धर्मचन्द जी हीरावत, श्री अनु जी हीरावत, श्री सुनील जी डागा, श्री मुन्नाजी कर्णावट, श्री अतुल जी कोठारी, श्री मनीष जी ढड्ढा, अध्यक्ष श्री नितिनभाई, श्री राजमोहनजी कोठारी, श्री राजकुमार जी बाफना, श्री कांकरियाजी, श्री अमितजी गुलेच्छा, श्री अमित जी बियाणी, श्री अभयजी, उपमाजी आदि सभी महानुभावों ने पर्युषण पर्वाराधना को सफल बनाया तथा भरपूर स्नेह दिया।

डॉ. रजनीकान्त शाह के घर पर रहकर बहुत कुछ सीखा। जैन सेण्टर के वर्तमान स्वरूप के निर्माण में उन्होंने पूर्ण लगन एवं निष्ठा से समय दिया तथा अर्थ सहयोग किया। निर्माण के पश्चात् समाज को भवन संभलाकर कोई पद स्वीकार नहीं किया। नासा के पूर्व वैज्ञानिक डॉ. आनन्द जी नाहर के माध्यम से South Asian Times समाचार-पत्र में पर्युषण के सम्बन्ध में मुख पृष्ठ पर साक्षात्कार प्रकाशित हुआ।

जोधपुर से प्रस्थान करने के पूर्व पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का परोक्ष रूप से तथा उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. का मंगल आशीर्वाद प्रत्यक्ष रूप से लेकर गया। जिससे समस्त कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गए। श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ के माध्यम से पर्युषण पर्व पर स्वाध्यायियों के भेजने का पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के समय से जो क्रम चल रहा है, उसी का सुपरिणाम है कि विदेशों में स्वाध्यायी अपनी सेवाएँ देने हेतु पहुँच रहे हैं।

बाल-स्तम्भ

जैसी करनी, वैसी भरनी

श्रीमती गिरिजा 'सुधा'

बाल-स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित इस रचना को पढ़कर अन्त में दिए गए प्रश्नों के उत्तर 20 वर्ष की आयु तक के पाठक 15 नवम्बर 2015 तक जिनवाणी संपादकीय कार्यालय, सामायिक-स्वाध्याय भवन, कुम्हार छात्रावास के सामने, प्लॉट नं. 2, नेहरु पार्क, जोधपुर-342003(राज.) के पते पर प्रेषित करें। उत्तर के साथ अपनी आयु तथा पूर्ण पते का भी उल्लेख करें। श्रेष्ठ उत्तरदाताओं को श्री महावीरचन्द जी बाफना, जोधपुर द्वारा अपनी धर्मपत्नी एवं श्रीमती अरुणा जी, श्री मनोजकुमार जी, श्री कमलेश कुमार जी बाफना की माताश्री स्व. श्रीमती मोहिनीदेवी जी बाफना की पुण्य-स्मृति में पुरस्कृत किया जा रहा है। पुरस्कारों की राशि इस प्रकार है- प्रथम पुरस्कार-500 रुपये, द्वितीय पुरस्कार-300 रुपये, तृतीय पुरस्कार- 200 रुपये तथा 150 रुपये के पाँच सान्त्वना पुरस्कार। पुरस्कार राशि सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल,जयपुर द्वारा भिजवाई जाती है।

माधू खटीक आज फिर बुरी तरह से ठर्रा पीकर पत्नी पर हाथ उठा बैठा था। गालियों का प्रवाह बदस्तूर जारी था। उस बेचारी ने आज सिर्फ यही कहा था पड़ौसिन से कि – ''इन अनबोले जीवों की हाय हमारा सुख–चैन छीनकर ही मानेगी। कितना कमाते हैं ये, पर पाप की लछमी में बरकत कहाँ ? तभी घर–खेंच मोची के मोची हैं हम।''

पाप की लक्ष्मी की बात सुनते ही माधू के तन–बदन में आग लग गयी। वह चीख उठा, घरवाली की पीठ पर दो–चार मुक्के जमाकर – ''.........बड़ी पुण्यात्मा बनी फिरती है। अरे खटीक बकरों का व्यापार नहीं करेंगे तो क्या गाजर–मूली बेचकर दिन काटेंगे हम अपने। खटीक वंश का नाम डुबोऊँगा क्या मैं माधो खटीक !'' ....और आग्नेय नेत्रों से उसे घूरता मूँछों पर बल देता पीड़ा से कराहती छोड़ वह बाहर चल दिया।

पत्नी उसकी सात पीढ़ियों को कोसती रही। थोड़ी देर बाद वह वापस आया और बोला- ''मैं बकरों को बेचने जा रहा हूँ। अभी तो बलि चढ़ाने वाले ऊपर–तरी पड़ रहे हैं। अच्छे दाम मिलने की उम्मीद है। दो तो बेच ही आता हूँ आज।''

आत्म–व्यथा से कराहती पत्नी ने कुछ भी नहीं कहा और वह उसी क्षण बाहर हो गया। बकरों को बाड़े से लेकर वह आगरा के एक कस्बे की ओर चल दिया। चलते–चलते दोपहर हो गयी तो उसने बकरों को एक छायादार जगह में बैठा दिया और खुद भी सुस्ताने की गरज से एक पेड़ के पास जा टिका।

उधर आगरा की ओर से जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज अपनी मण्डली के साथ

कदम बढ़ा रहे थे। उन्होंने उसे सोते और पास में बकरों को चरते देखा, तो उनके मन में अनायास ही दया उमड़ आयी। उन्होंने मन-ही-मन उस कसाई को आज सही रास्ता बतलाने का निर्णय किया और आप भी वहीं वृक्षों की छाया में विश्राम करने लगे। जैसा कि स्वाभाविक था, कुछ ही देर बाद माधू नींद से जागा और बकरे लेकर चलने लगा।

तभी करुणामूर्ति जैन दिवाकर मुनि चौथमलजी ने उससे पूछा - "क्यों भैया, इन्हें कहीं बेचने ले जा रहे हो क्या ?"

"बेचूँगा नहीं तो खाऊँगा क्या ?" वह एकदम रुखाई से बोला और चलने की तैयारी करने लगा।

महाराजश्री ने अपनी मधुर वाणी में उसको समझाते हुए कहा - "भाई, तू यह पापकर्म आखिर किसलिए करता है ? जीवन-निर्वाह के तो छोटे-बड़े अनेक साधन मिल सकते हैं। तुझे यह कहावत पता नहीं है क्या - 'जैसी करणी वैसी भरणी ?' अरे, इस तरह मूक पशुओं की हिंसा करेगा तो उनकी हाय आखिर किस पर पड़ेगी ? दूसरों को दुःख देकर संसार में आज तक कौन सुखी हुआ है ? अब तुम यह सब पाप भी कर रहे हो और सुखी भी नहीं हो; हो क्या ? देखो, न तो शरीर पर अच्छे कपड़े हैं, न बढ़िया खाना-पीना मयस्सर है। फिर ऐसी पाप की कमाई के पीछे पड़े रहने में क्या सार है भैया? सिर्फ पेट भरने के लिए क्यों पाप की गठरी बाँध रहे हो; बोलो बाँध रहे हो या नहीं ?"

"महात्माजी! मैं आपके सामने जरा भी झूठ नहीं बोलूँगा। पर यह बात आपने सच ही कही है कि 'जैसी करणी, वैसी भरणी'। मैं सुखी जरा भी नहीं हूँ। आमदनी भी भरपूर है वैसे, पर उसमें बरकत जरा भी नहीं है।" माधू ने अपनी बात झिझकते-झिझकते भी कह ही डाली।

महाराजश्री ने तभी अपना उपदेश आगे बरकरार रखते हुए कहा - "भाई, अब तुम समझ गये हो कि सुखी नहीं हो, इस धन्धे की कमाई में बरकत भी नहीं है, फिर इस धन्धे को छोड़ क्यों नहीं देते ? तुम्हें ध्यान है क्या कि सवाईमाधोपुर के खटीकों ने ऐसा जघन्य पाप करना छोड़ दिया है। वे अब दूसरे धन्धों में लगे हुए हैं और ठाट से अपनी रोटी कमा-खा रहे हैं, उनके घरों में आनन्द-ही-आनन्द है।"

माधू खटीक को यह मालूम था, अतः वह बोला - "जी हाँ! महात्माजी! मुझे पता है कि वे दूसरे धन्धे में लग गये हैं। मैं भी इस धन्धे से पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ पर..........।"

"पर ! क्या ?" उन्होंने पूछा।

"बात यह है गुरु महाराज कि मैं कोई धनवान आदमी तो हूँ नहीं, गरीब हूँ, जैसे-तैसे पेट पाल रहा हूँ। मेरे पास बत्तीस बकरे हैं। यदि ये बिक जाएँ तो इनकी पूँजी से मैं कोई-न-कोई छोटा बड़ा धन्धा शुरू कर दूँगा। आप मेरा यकीन कीजिये प्रभो! मैं कभी भी अपने प्रण

से नहीं टलूँगा। पापी पेट को भरने के लिए मैं किसी जीव को जरा भी नहीं सताऊँगा।"

महाराजश्री ने श्रावकों से कहकर उसके बकरों के दाम दिलवा दिये। माधू खटीक का जीवन उस दिन जो बदला तो उसकी सारी आस्थाएँ ही बदल गयीं। जिन्दगी की रौनक बदल गयी। वह महाराजश्री के चरणों में गिर कर अपने कुकृत्यों के लिए क्षमायाचना करता अश्रु-बिन्दुओं से उनके चरण-कमल प्रक्षालित कर रहा था।

हिंसा पर अहिंसा की इस विजय का सारे शिष्य एवं श्रावक-समुदाय पर बड़ा व्यापक प्रभाव हुआ। कोई गुनगुना उठा तभी – संग: संता किं न मंगलमातनोति – सन्तों की संगति क्या-क्या मंगल नहीं करती ?

माधू घर आया तो उसका आचरण बदला हुआ था। उसने एक छोटी-सी दुकान लगाकर पाप की कमाई से छुटकारा पाकर घर में बरकत करने वाली खरे पसीने की कमाई लाने की राह तलाश ली थी। उस राह पर बढ़ गया वह। अब उसकी पत्नी उस पर नाराज़ नहीं रहती। बदलती आस्थाओं के साथ वह उसकी सच्ची जीवन-संगिनी बन गयी; हर पल प्रतिक्षण हीर-पीर की भागीदार।

-(साभार : जैन दिवाकर स्मृति ग्रंथ), प्रेषक : सुरेशचन्द्र धींग, बम्बोरा, उदयपुर (राज.)

प्रश्न:-

1. माधो खटीक क्या कार्य करता था?
2. मुहावरों में वाक्य प्रयोग कीजिए- (1) पिण्ड छुड़ाना, (2) जैसी करणी वैसी भरणी।
3. अर्थ बताइये- पाप की गठरी बांधना, पाप की लक्ष्मी, करुणामूर्ति, चरण-कमल, जीवन-संगिनी।
4. माधो की पत्नी क्यों दु:खी थी?
5. माधो के जीवन में कैसे परिवर्तन आया?
6. 'अनबोले जीवों की हाय हमारा सुख-चैन छीनकर ही मानेंगी।' कथन का क्या आशय है?

बाल-स्तम्भ [जुलाई-2015] का परिणाम

जिनवाणी के अगस्त-2015 के अंक में बाल-स्तम्भ के अंतर्गत 'आप बीती घटना/जियो और जीने दो' के प्रश्नों के उत्तर 80 बालक-बालिकाओं से प्राप्त हुए। पूर्णांक 30 हैं।

पुरस्कार एवं राशि	नाम	अंक
प्रथम पुरस्कार-500/-	ऋषभ चौपड़ा-जोधपुर(राज.)	28
द्वितीय पुरस्कार-300/-	अर्पित जैन-जोधपुर(राज.)	27
तृतीय पुरस्कार- 200/-	मानसी सतीश जी जैन (राज.)	26.5
सान्त्वना पुरस्कार- 150/-	निक्षित दिनेशजी जैन-झालावाड़(राज.)	26

कन्नू सतीशजी जैन-जयपुर (राज)	26
मनन सुमितजी कटारिया-उदयपुर (राज.)	25.5
अमित जैन-जयपुर (राज.)	25.5
दीवांशी जयदीपजी बैद-भीनासर (राज.)	25.5

सूचना

प्रिय बच्चों! आप सभी बाल-स्तम्भ में सहभागिता निभाकर 'जिनवाणी' के सक्रिय पाठक बन रहे हैं। आपके द्वारा उत्तर भी बहुत अच्छे प्रेषित किये जा रहे हैं। कुछ बच्चों द्वारा उत्तर पोस्टकार्ड पर दिए जाते हैं, वे पठनीय नहीं होते हैं। अतः पोस्टकार्ड पर दिए गए उत्तर प्रतियोगिता में शामिल नहीं किए जायेंगे। **-सम्पादक**

स्वास्थ्य-आलेख प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता का परिणाम

जिनवाणी के जुलाई-अगस्त-2015 के अंक में 'स्वास्थ्य-विज्ञान स्तम्भ' के अंतर्गत '**प्रभावशाली चुम्बकीय चिकित्सा**' के प्रश्नों के उत्तर 27 प्रतियोगियों से प्राप्त हुए। सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले प्रतियोगियों के नाम इस प्रकार हैं-

पुरस्कार एवं राशि-	नाम	
प्रथम पुरस्कार (1000/-रु.)	श्रीमती नीता जैन-जयपुर(राज.)	(69/70)
द्वितीय पुरस्कार (750/-रु.)	श्री अनिलकुमार जैन-कोटा (राज.)	(68.5/70)
तृतीय पुरस्कार (500/-रु.)	श्रीमती विजय कोठारी-अजमेर(राज.)	(68/70)

अन्य प्रतियोगी अपने अंक मालूम करना चाहें तो चंचलमल जी चोरड़िया-94141-34606 (मो.) से सम्पर्क कर सकते हैं। प्रतियोगी अपना नाम व पूरा पता उत्तरपुस्तिका एवं लिफाफे पर अवश्य लिखें। पता नहीं लिखे जाने पर उसे प्रतियोगिता में शामिल नहीं किया जाएगा।

रात्रिभोजन और प्रकाश

संकलन : श्री एन. महावीरचन्द छाजेड़

रात्रि में चाहे जितना प्रकाश क्यों न हो, किन्तु वह दिवस के प्रकाश से भिन्न प्रकार का प्रकाश होता है। डॉक्टर भी विशेष प्रकार के रोग वाले को कहते हैं कि तुम्हारा तो एक्स-रे से फोटो दिन में ही लेना पड़ेगा, रात्रि में नहीं लिया जा सकता। क्योंकि दिन में प्रकाश में जो किरणें होती हैं, वे लाइट आदि में होती नहीं हैं। इसलिये दिन में बादल होने पर भी मन्द प्रकाश में जो जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, वे रात्रि में उत्पन्न हो जाते हैं। अतः पाप से बचने के लिए रात्रिभोजन अवश्य छोड़ना चाहिए। *-25, चन्द्रप्पा मुदली स्ट्रीट, साउकार पेट, चेन्नई-600079 (तमि.)*

युवक परिषद्

आओ स्वाध्याय करें (सप्तम प्रतियोगिता)

भगवान महावीर सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी (2)

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद् के तत्त्वावधान में 'आओ स्वाध्याय करें' शीर्षक से 'द्विमासिक आगम प्रश्नोत्तरी' प्रतियोगिता इस बार भी 'भगवान महावीर' की जीवनी पर आधारित है, जिसमें सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'भगवान महावीर' की सहायता ली जा सकती है। प्रतियोगिता का स्वरूप इस प्रकार है-

1. इस प्रतियोगिता का आयोजन पाँच संभागों के आधार पर किया गया है- 1. पल्लीवाल क्षेत्र, दिल्ली, पंजाब क्षेत्र, 2. मारवाड़, गुजरात क्षेत्र, 3. कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश क्षेत्र, 4. जयपुर, पोरवाल क्षेत्र, मध्यप्रदेश क्षेत्र, 5. महाराष्ट्र एवं अन्य क्षेत्र।
2. प्रत्येक संभाग में 15-45 वर्ष तक एवं 45 वर्ष से अधिक के दो आयु वर्ग के ग्रुप रहेंगे, जिनमें प्रत्येक ग्रुप में प्रथम विजेता को- 1100/- रुपये, द्वितीय को- 500/-रुपये, तृतीय को-250/- रुपये की प्रोत्साहन राशि दी जाएगी।
3. इस प्रतियोगिता में कम से कम एक व्यक्ति एवं अधिकाधिक पाँच व्यक्तियों तक का ग्रुप भाग ले सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अथवा ग्रुप होने पर ग्रुप के प्रत्येक सदस्य का नाम एवं आयु का उल्लेख अपने उत्तर पत्रक के साथ करना आवश्यक है।

आशा है आप इसमें पूर्ण उत्साह से भाग लेकर अपने आगम-ज्ञान का वर्धन करेंगे। उत्तर-पत्रक प्राप्त होने की अंतिम तिथि **5 जनवरी 2016** है।

पुस्तक-प्राप्ति का पता- श्री सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.), फोन : 0141-2575997, फैक्स-0141-2570753

उत्तर भेजने का पता- श्री अनिल जी, कार्यालय प्रभारी, अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद्, घोड़ों का चौक, वर्द्धमान अस्पताल के पीछे, जोधपुर-342001 (राज.) मोबाइल नं. 094141-40373

प्रश्न-पत्र सम्बन्धी समस्या के समाधान हेतु सम्पर्क सूत्र- श्री राजीव जी नाहर, सूरत-093751-65765

विशेष- Whatsapp पर भी युवक-परिषद् के सदस्यों द्वारा जिज्ञासा-समाधान का कार्य किया जा रहा है।

मुझे पहचानो-

1. मेरा क्रोधानल मेघ की जलधारा से बुझे दावानल की तरह शांत हो गया।
2. हम तो केवल आगामी काल में शासन की जो गति होने वाली है, उसके दिग्दर्शक मात्र हैं।
3. दो घड़ी देव दुन्दुभि नहीं सुन पाता तो मैं भावना के बल पर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता।

4. मैं भगवान महावीर के शासन में अन्तिम मोक्षगामी राजा हूँ।
5. मुझे निश्चय में निर्दोष होने पर भी लोकविरुद्ध वस्तु का ग्रहण नहीं करना चाहिये।
6. मैं श्रमणों की पर्युपासना का अन्तिम फल हूँ।
7. मेरे उदाहरण से स्पष्ट होता है कि देवों को भी दुष्कार्यों का कटुफल भोगना पड़ता है।
8. भगवान के प्रथम और अन्तिम उपसर्ग में भी मेरी समानता थी।
9. मैंने पंचास्तिकाय के बारे में अन्य तीर्थिकों को निरुत्तर कर शासन प्रीति का अनुमोदन किया।
10. मैंने वीर निर्वाण और विक्रमादित्य के बीच 470 वर्ष का अन्तर माना है।

एक शब्द में उत्तर दीजिये–

11. आँगन में आया हुआ कल्पतरु लौट रहा है। यहाँ कल्पतरु किसे कहा गया?
12. कौनसी वायु उत्पन्न कर उससे भगवान को चक्र की तरह घुमाया।
13. चाबुक की मार खाये उच्च जातीय अश्व की उपमा किसे दी गई?
14. भगवान के किस गणधर की वय सबसे कम थी?
15. कौन श्रमणोपासक सौ घरों में आहार ग्रहण करता दिखाई देता है?
16. कौनसे आरक के मनुष्य मरकर पाँचों प्रकार की गति में जाते हैं?
17. आए थे रत्न देखने पर दीक्षित हो गये। कौन?
18. किसी को भी चिरकाल तक प्रियसंयोग से सुखी कौन नहीं देख सकता?
19. भूत-भविष्य की चिन्ता से कौन क्षीण होता है?
20. किस सूत्र का जानकार पंचमकाल में चतुर्दश पूर्वधर के समान ज्ञानवान समझा जाएगा?

किसने कहा–

21. भगवन्! जिनशासन में क्या सच कहने वालों को आलोचना करनी होती है?
22. क्षत्रिय, सर्प, अग्नि व भिक्षु को अल्प-वयस्क समझकर कभी उनका पराभव या अपमान नहीं करना चाहिये।
23. शांति का मार्ग ही श्रेयस्कर है।
24. पूर्व जन्म के दुष्कर्मों के कारण तुम्हें सर्प बनना पड़ा है।
25. आह! वे क्या करते होंगे?
26. मैं केवलज्ञान को धारण करने वाला अरहा, जिनकेवली होकर विचरता हूँ।
27. दसवाँ तैयार नहीं हुआ, तो मैं ही दसवाँ होता हूँ।
28. पतिदेव! कहना जितना सरल है, उतना करना नहीं।
29. अनु जानसि।
30. अहो, मेरे ऊपर भी कोई नाथ है। अवश्य ही मेरी करणी में कसर है।

अंकों में उत्तर दीजिए–

31. अपने साधनाकाल में भगवान ने कितने उपवास किये?
32. भगवान महावीर और बुद्ध की वय में कितने वर्ष का अन्तर था?

33. उत्सर्पिणी काल का कितना समय व्यतीत होने पर प्रथम तीर्थंकर का जन्म होगा?
34. आर्य जम्बू के मोक्षगमन पर भरतक्षेत्र से कितने स्थानों का विलोप हो जायेगा?
35. कितने पापों की विरति-निवृत्ति से ही जीव संसार को घटाता है?
36. छठे और सातवें चातुर्मास के बीच की अवधि के आठ मास में भगवान को कितने उपसर्ग आए?
37. कितने हजार सिंहों का बल एक अष्टापद में होता है?
38. एक लाख वर्ष के संयम जीवन में नन्दनमुनि ने कितने मासक्षपण किये?
39. "संसार कभी भव्य जीवों से खाली नहीं होगा।" इसे कितने उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है?
40. भगवान महावीर के शासन में कितने निह्नव उनके निर्वाणोपरांत हुए?

हाँ/ना में उत्तर दीजिये-

41. आग जलाने वाला अधिक आरम्भ करता है और बुझाने वाला कम।
42. तीर्थंकर का गर्भहरण असम्भव घटना हो सकती है, पर आश्चर्यजनक नहीं।
43. आनन्द श्रमणोपासक ने तीर्थंकर महावीर को देखकर वंदन किया और शीघ्र केवलज्ञान उत्पन्न होने की बात कही।
44. राजा श्रेणिक ने भगवान के प्रवृत्ति-वृत्त को जानने की बड़ी व्यवस्था कर रखी थी।
45. तत्कालीन गणराज्यों में लिच्छवी गणराज्य सबसे प्रबल था।
46. भगवान महावीर के साधु-साध्वी मासकल्प से अधिक बिना कारण रहें, यह स्थित कल्प है।
47. क्रोध, लोभ या मोहादि भाव में अज्ञानपूर्वक, असमाधि से मरना बालमरण है।
48. च्यवन काल अत्यन्त सूक्ष्म कहा गया है, जिसे छद्मस्थ जान सकते हैं।
49. शक्ति, संपत्ति और साधनों का अच्छापन एवं बुरापन सदुपयोग और दुरुपयोग पर निर्भर है।
50. जैन धर्म उत्तारवादी नहीं, अवतारवादी है।

राजप्रश्नीयसूत्र पर आधारित प्रतियोगिता-पंचम का परिणाम

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद् के तत्त्वावधान में आगम अध्ययन के लक्ष्य से जिनवाणी के माध्यम से प्रारम्भ की गई राजप्रश्नीयसूत्र की प्रतियोगिता पंचम (जून-2015) में 149 प्रतियोगियों ने भाग लिया। परिणाम संभागक्रम से इस प्रकार रहा-

संभाग/क्षेत्र	15 से 45 वर्ष	45 वर्ष से ऊपर
1. पल्लीवाल/दिल्ली /पंजाब	(1) मंजू जैन-हिण्डौन	(1) कस्तूरचन्द जैन-खेरली
	(2) श्रेष्ठी जैन-दिल्ली	(2) पारसचन्द जैन-भरतपुर
	(3) संगीता जैन-फरीदाबाद	(3) सुरेशचन्द जैन-खेरली
2. जयपुर/पोरवाल/ मध्यप्रदेश	(1) दीपेश जैन-जयपुर	(1) ज्योति भण्डारी-बोंलिया
	(2) संगीता कोठारी-बूँदी	(2) प्रमिला कीमती-इन्दौर
	(3) योगिता जैन-जयपुर	(3) भरतसिंह जैन-जयपुर

3.महाराष्ट्र एवं अन्य क्षेत्र	(1) अथांग जैन-जलगांव	(1) दीपचन्द बोथरा-पाचोरा
	(2) आरती मूथा-अमरावती	(2) शान्ता बाफना-नासिक
	(3) रुचिता सुराणा-घोटी	(3) प्रशांत पारख-जलगांव
4. कर्नाटक/तमिलनाडु /आंध्रप्रदेश	(1) रेखा जसवंत नंगावत-मैसूर	(1) एम.भीकमचन्द कोठारी-चेन्नई
	(2) मधुबाला सहलोत-मैसूर	(2) पारस जैन-वल्लारी
	(3) हेमा किशोरचन्द बाघमार-सिकंदराबाद	(3) आर. मदनलाल बाघमार-चेन्नई
5. मारवाड़/गुजरात	(1) खुशबू गोलेछा-ब्यावर	(1) पुष्पा एच.गोलेछा-ब्यावर
	(2) सुनीता डोसी-ब्यावर	(2) सुगनचन्द छाजेड़-जोधपुर
	(3) उपमा चौधरी-अजमेर	(3) हस्तीमल गोलेछा-ब्यावर

6. ग्रुप में-
(1) छिनियाबाई हिंगड़/ शकुन्तला हिंगड़/ स्वीटी हिंगड़-पाली
(2) पुष्पा गादिया/हर्षा जैन-पाली
(3) पुष्पा छाजेड़/ कल्पना बोथरा/ मंजुला बोथरा-पाचोरा

परिणाम के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हेतु सम्पर्क सूत्र- श्री गौतम जी जैन, पचाला-090010-17837

समाधान (राजप्रश्नीयसूत्र)

1. जम्बूद्वीप	**2.** एक योजन प्रमाण	**3.** आठ
4. आमलकप्पा/आमलकल्पा	**5.** सुधर्मा	**6.** जीत
7. पाँच	**8.** चरम शरीरी	**9.** आम्रशालवन
10. उपानह/जूता	**11.** चार	**12.** सौधर्म
13. चार, तीन (आभ्यन्तर, मध्यम, बाह्य)		**14.** शून्य / नहीं की
15. रतिकार	**16.** 32	**17.** 26
18. 3	**19.** 32,00,000	**20.** 108
21. 49	**22.** 5	**23.** 32
24. 4,000	**25.** 5	**26.** 16,8
27. 4	**28.** 108	**29.** 108
30. 500 योजन	**31.** केकयि-अर्ध/केकय-अर्ध	
32. सूर्यकान्ता, सूर्यकान्त	**33.** 4,4	**34.** कंबोज
35. चित्त सारथी	**36.** चार पल्योपम	**37.**कोष्ठक
38. पितामह	**39.** आँवला/आँवले	**40.** कूटाकारशाला
41. सूर्यकान्त	**42.** कुणाला	**43.** छः

44. अश्व 45. दृढ़प्रतिज्ञ

46. 1. खड्ग-तलवार, 2. छत्र, 3. मुकुट, 4. उपानह-जूता, 5. चामर।

47. 1. अवग्रह, 2. ईहा, 3. अवाय, 4. धारणा।

48. 1. स्वस्तिक, 2. श्रीवत्स, 3. नन्दावर्त, 4. वर्धमानक, 5. भद्रासन, 6. कलश, 7. मत्स्य, 8. दर्पण।

49. 1. समस्त प्राणातिपात से विरमण, 2. समस्त मृषावाद से विरमण, 3. समस्त अदत्तादान से विमरण, 4. समस्त बहिद्धादान से विमरण।

50. चार प्रकार की- 1. क्षत्रिय परिषदा, 2. गाथापति परिषदा, 3. ब्राह्मण परिषदा, 4. ऋषि परिषदा।

चार गतियों के दुःखों से भीति क्यों?

श्री देवेन्द्रनाथ मोदी

एकाकी आया है जग में, एकाकी ही जाना है जग से,
फिर क्यों लगाए द्वार पर अर्गला नेहानुराग से।
जब देह ही अपनी नहीं, तब गेह से फिर मोह क्यों?
जब द्वेष भी अपना नहीं, फिर शत्रु पर हो रोष क्यों?
रूप यौवन थिर नहीं, इक पल जहाँ इस देह का,
ध्रुव आत्मा को छोड़, फिर इसी से प्रीति क्यों?
कस्तूरीमृग सम चंचल मन, दौड़ रहा इस भव-वन में,
सुख की खोज यहाँ ऐसे करें, जैसे जल की मरुस्थल में।
तृष्णाओं की दाहक ज्वाला, शीतल होगी शुद्ध घनों से,
अनित्य और अशरण जग में, पर-पदार्थों से प्रीति क्यों?
चाहे नरक हो या निगोद, किसी से भी फिर भीति क्यों?
स्वर्ग और ग्रैवेयक से भी, फिर हो किसी की प्रीति क्यों?
पूर्व संचित पुण्य से, सब कुछ सुलभ संसार में,
नर देह उत्तम कुल मिला, कंचन कामिनी भी साथ में।
बस तत्त्व का श्रद्धान ही है, कठिन इस संसार में।
परम चैतन्य अखण्ड रूप सब आलोककारी।
निर्विकल्प समाधि में लीन, धर्म का जो है धारी।
चार गतियों के दुःखों से, फिर उसे हो भीति क्यों?

-"हुक्म", 5-ए/1, सुभाषनगर, पालरोड़, जोधपुर-342008 (राज.)

कृति की 2 प्रतियाँ अपेक्षित हैं

नूतन साहित्य

डॉ. श्वेता जैन

जैन धर्म-दर्शन : एक अनुशीलन- प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन, ***प्रकाशक***- प्राकृत भारती अकादमी, 13-ए, मेन मालवीय नगर, जयपुर-302017 (राज.), फोन : 0141-2524827,2520230, ***पृष्ठ***-488+26, ***मूल्य***- 440 रुपये मात्र, प्रथम संस्करण सन् 2015

धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक एवं संवाहक होते हैं। धर्म की अनुपालना के साथ व्यक्ति दर्शन को जीता है। अतः धर्म दर्शन से अनुप्राणित है, दर्शन को यदि धर्म से पृथक् कर दिया जाए तो धर्म निष्प्राण हो जाता है। इस परिपाटी का अनुकरण करते हुए लेखक ने दोनों ही पक्षों को अपने ग्रन्थ में संजोया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन सिद्धान्त मर्मज्ञ एवं चिन्तनशील विद्वान् लेखक ने चार प्रमुख खण्डों में आलेखों को विभाजित कर उसे सुव्यवस्थित रूप दिया है, वे खण्ड हैं- तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, आचार मीमांसा और तुलनात्मक आलेख। **तत्त्वमीमांसा** के अन्तर्गत उन्होंने अस्तिकाय, आत्म-विमर्श, पुद्गल-परमाणु, काल स्वरूप, कारण-कार्य सिद्धान्त, अनेकान्तवाद एवं तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति को; **ज्ञानमीमांसा** में श्रुतज्ञान, सम्यग्दर्शन, प्रमाण-विवेचन, अवग्रह, नय-निक्षेप तथा इसिभासियाइं के दार्शनिक विवेचन को; **आचार मीमांसा** के अन्तर्गत आचारांग सूत्र में अप्रमत्त जीवन की प्रेरणा, अहिंसा का समाज दर्शन, जैनसाहित्य में अहिंसा हेतु उपस्थापित युक्तियाँ, परिग्रह-परिमाण व्रत की प्रासंगिकता, पर्यावरण संरक्षण में भोगोपभोग परिमाण व्रत की भूमिका, समाधिमरण, प्रतिक्रमण जैसे चिन्तनीय विषयों को सम्मिलित किया है। अन्य सिद्धान्तों से स्वसिद्धान्त की तुलना एवं समीक्षा किये बिना किसी सिद्धान्त को ठीक से समझा नहीं जा सकता है- इसी दृष्टि से जैन जगत् के अग्रणी विद्वान् प्रो. जैन ने बौद्ध धर्म-दर्शन के साथ जैन धर्म-दर्शन की तुलना करते हुए एक सुन्दर आलेख इसमें योजित किया है।

'जैन आगम-परम्परा एवं निगम-परम्परा में अन्तः सम्बन्ध' एवं 'जैन-बौद्ध वाङ्मय में वर्णाश्रम धर्म और संस्कार' नामक आलेख जैन सिद्धान्तों को गहनता से समझने एवं सोचने का अवसर प्रदान करते हैं। इस ग्रन्थ में लेखक द्वारा उमास्वाति की दो कृतियाँ 'प्रशमरति प्रकरण' एवं 'तत्त्वार्थ सूत्र' के कर्तृत्व एवं साम्य-भेद को रेखांकित किया गया है तथा वीतराग और स्थितप्रज्ञ जैसी आध्यात्मिक स्थितियों का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने नय की आध्यात्मिक दृष्टि से समीक्षा करते हुए कहा है कि बाह्य क्रियाएँ यदि

अन्तःसाधना का साधन बनती हैं तो उनकी अपनी उपयोगिता है। धर्म-क्रियाएँ साधन हैं तथा आन्तरिक विकारों की शुद्धि साध्य है। साधन को साध्य की सिद्धि के अनुकूल बनाने की आवश्यकता है। श्रुतज्ञान के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि श्रुतज्ञान व्यक्ति को सांसारिक आकर्षणों से दूर करता है तथा उसे मुक्ति के मार्ग हेतु प्रेरित करता है। यह आध्यात्मिक विकास हेतु बहुत बड़ी शक्ति है, जब यह आवरित हो जाती है या भ्रान्त होती है तो जीव को सही पथ का ज्ञान नहीं होता है।

प्रत्येक आलेख में सर्वप्रथम प्रदत्त एक अनुच्छेद लेख की भूमिका के रूप में पाठक की रुचि को वृद्धिंगत करता है। पिछले दो दशकों में लिखित शोधालेखों का यह पुस्तक अनूठा संग्रह है। इसका प्रत्येक लेख अनेक सन्दर्भों से समृद्ध है, जो लेखक के व्यापक अध्ययन को इंगित करता है। प्रत्येक लेख पूर्वापर समन्वय के कारण पाठक की रुचि को अन्त तक बनाए रखता है। पुस्तक स्वाध्यायियों में शोध-प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायक होगी तथा शोधार्थियों के शोध-कार्य में लाभकारी सिद्ध होगी। विषय-वस्तु का सामान्य और विशेष स्वरूप में विवेचन होने से यह ग्रन्थ शोधार्थी-स्वाध्यायियों के साथ प्रबुद्ध एवं रुचिशील पाठक वर्ग के लिए भी उपयोगी है। इसमें विवेचित पारिभाषिक शब्दों की सूची परिशिष्ट के रूप में होती तो इसकी उपयोगिता में और अधिक वृद्धि हो जाती।

लोकप्रकाश का समीक्षात्मक अध्ययन- डॉ. हेमलता जैन, ***प्रकाशक***- लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद (गुजरात), फोनः 079-26302463, ***पृष्ठ***-391+28, ***मूल्य***- 500 रुपये मात्र, सन् 2014

16-17 वीं शती के उपाध्याय विनयविजयजी म.सा. सम्राट् अकबर प्रतिबोधक आचार्य हीरविजयजी की परम्परा के मुनि थे। वे न्याय-व्याकरण के वेत्ता, आगमज्ञ और आध्यात्मिक कवि थे। आगमों व व्याख्याग्रन्थों पर आधृत उनकी कृति 'लोकप्रकाश' 37 सर्गों में निबद्ध 18000 श्लोक प्रमाण है। 'लोकप्रकाश' पर शोध प्रबन्ध के रूप में उपर्युक्त प्रकाशित पुस्तक को लोकप्रकाश के प्रवेश द्वार के रूप में उपमित किया जा सकता है। लोकप्रकाश के द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक एवं भावलोक के रूप में जैन धर्म-दर्शन की विषय-वस्तु उपस्थापित की गई है। लेखिका ने आठ अध्यायों के अन्तर्गत संक्षेप में विशालकाय ग्रन्थ को समेटा है तथा उसके वैशिष्ट्य को भी स्थान-स्थान पर रेखांकित किया है। अध्याय निम्नानुसार हैं- 1. उपाध्याय विनयविजयः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 2. लोक स्वरूप एवं जीव-विवेचन (1), 3. जीव-विवेचन (2), 4. जीव-विवेचन (3), 5. जीव-विवेचन (4), 6. क्षेत्र लोक, 7. काललोक एवं 8. भावलोक। ग्रन्थ के प्रारम्भ में पारिभाषिक शब्दावली को सूचीबद्ध किया गया है ताकि पाठकों को समझने में सुगमता हो सके।

जिनवाणी के आगामी विशेषांक 'आचार्य पद' हेतु लेख आमन्त्रित

जिनशासन गौरव, परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के 'आचार्य पद आरोहण' का यह रजतवर्ष चल रहा है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल ने इस पावन वर्ष में 'आचार्यपद' पर जिनवाणी का विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। अतः सुज्ञ विद्वान् लेखकों से निवेदन है कि वे निम्नांकित में से किसी एक विषय पर अपना विचारपूर्ण आलेख 31 दिसम्बर 2015 के पूर्व अवश्य प्रेषित कर अनुगृहीत करें।

प्रस्तावित विषय

1. पंच परमेष्ठी में आचार्य का स्थान
2. आचार्य शब्द का तात्पर्य
3. आचार्य के छत्तीस गुण : संक्षिप्त परिचय
4. अहिंसा महाव्रत
5. सत्य महाव्रत
6. अस्तेय महाव्रत
7. ब्रह्मचर्य महाव्रत
8. अपरिग्रह महाव्रत
9. क्रोधविजयशीलता
10. मानविजय शीलता
11. मायाविजयशीलता
12. लोभविजयशीलता
13. ब्रह्मचर्य की नववाड़
14. ईर्या समिति
15. भाषा समिति
16. एषणा समिति
17. आदान-निक्षेपण समिति
18. परिष्ठापनिका समिति
19. मनोगुप्ति
20. वचनगुप्ति
21. कायगुप्ति
22. ज्ञानाचार
23. दर्शनाचार
24. चारित्राचार
25. तपाचार
26. वीर्याचार
27. आचार सम्पदा
28. श्रुत सम्पदा
29. वचन सम्पदा
30. वाचना सम्पदा
31. मति सम्पदा
32. प्रयोगमति सम्पदा
33. संग्रह परिज्ञा सम्पदा
34. इन्द्रियविजयशीलता
35. आहार-विवेक एवं रसनेन्द्रिय विजय
36. मनोविजयशीलता
37. 'आचार्य पद' का ऐतिहासिक विवेचन
38. अन्य धर्मों में आचार्यपद की व्याख्या

इनके अतिरिक्त विषय पर भी सम्बद्ध आलेखों का स्वागत है।**-सम्पादक, जिनवाणी**

सांवत्सरिक क्षमायाचना

छद्मस्थता में त्रुटि स्वाभाविक है। पर्वाधिराज पर्युषण पर्व की आराधना करते हुए हमने भाद्रपद शुक्ला पंचमी, शुक्रवार, 18 सितम्बर 2015 को सांवत्सरिक प्रतिक्रमण कर सर्व जीवयोनि से विशुद्ध हृदय से क्षमायाचना की है। हम पूज्य आचार्यप्रवर-उपाध्यायप्रवर प्रभृति संत-सतीवृन्द से अविनय-आशातना के लिए करबद्ध क्षमाप्रार्थी हैं, वहीं संघ-समाज के सभी भाई-बहिनों से हार्दिक क्षमायाचना करते हैं। विगत तीन वर्षों के हमारे कार्यकाल में हम सब से और हमारे साथियों के किसी वचन-व्यवहार व कार्यप्रणाली से किसी भी संघ-सदस्य की भावनाओं को ठेस पहुँची हो, इसके लिए हम अन्तःकरण से क्षमायाचना करते हैं।

क्षमाप्रार्थी

ज्ञानेन्द्र बाफना	पी.एस. सुराणा	आनंद चौपड़ा	मानेन्द्र ओस्तवाल
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महामंत्री	अतिरिक्त महामंत्री

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर

कैलाशमल दुग्गड़	सम्पतराज चौधरी	विनयचन्द डागा
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मंत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

पूर्णिमा लोढ़ा	मंजू भण्डारी,मीना गोलेच्छा	बीना मेहता
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महासचिव

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल, जोधपुर

जितेन्द्र डागा	विक्रम बाघमार, महावीरचन्द बोथरा	श्रेयांस मेहता
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महासचिव

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद्, जोधपुर

इन्दिरा बोहरा	नीलू डागा	विधि कोठारी
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	महासचिव

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न बहू-बालिका मण्डल, जोधपुर

कुशल गोटेवाला	राजेश भण्डारी
संयोजक	सचिव

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर

सुरेश चोरडिया	राजेश कर्णावट	नवरतन गिड़िया
संयोजक	सह संयोजक	सचिव

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

एवं

समस्त सदस्यगण, संचालन समिति एवं कार्यकारिणी

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावकसंघ व सहयोगी संस्थाएँ

समाचार विविधा

हिण्डौन चातुर्मास में तप-त्याग, ज्ञानाराधन एवं भक्ति का अनूठा संगम

अबतक 9 मासक्षपण एवं उससे अधिक की तपस्याएँ सम्पन्न

सामायिक, प्रतिक्रमण आदि सीखने का क्रम जारी

आगमज्ञ, प्रवचन प्रभाकर, व्यसनमुक्ति, शीलव्रत एवं रात्रिभोजन-त्याग के प्रबल प्रेरक, जिनशासन गौरव, **परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा., महान् अध्यवसायी सरसव्याख्यानी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा.** आदि ठाणा 6 के पावन वर्षावास की सन्निधि पाकर हिण्डौन के श्रद्धालु भक्त प्रमोदभाव से ज्ञानाराधन-तपाराधन एवं धर्माराधन में उल्लासपूर्वक पुरुषार्थ कर चातुर्मास की दीप्ति को वर्धापित कर रहे हैं।

गत माह यहाँ 30 अगस्त को मण्डावर संघ उपस्थित हुआ। 1सितम्बर को क्षेत्रीय प्रधान श्री राजेश जी जैन सुपुत्र श्री हुकमचन्दजी जैन ने पूज्य आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से 35 दिवसीय उग्र तपस्या के प्रत्याख्यान लिए। तप की अनुमोदना में उपवास एवं एकाशन की आराधना अच्छी संख्या में हुई। 03 सितम्बर को अलवर संघ पूज्य आचार्यप्रवर के पदार्पण एवं चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। 4 सितम्बर को दूदू संघ ने विनति प्रस्तुत की। 5 सितम्बर को शक्तिनगर-जोधपुर एवं खेरली संघ उपस्थित हुए। बजरिया सवाईमाधोपुर संघ ने 5-6 सितम्बर को लाभ लिया। 7 सितम्बर को राजस्थान के गृहमंत्री श्री गुलाबचन्दजी कटारिया पूज्य आचार्यप्रवर की सेवा में पधारे एवं दर्शन-वन्दन कर हर्षित हुए। वे निकटवर्ती क्षेत्र में आने पर पूज्य आचार्यप्रवर के दर्शनों का लाभ निरन्तर ले रहे हैं। 8 सितम्बर को अजमेर संघ चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। मणीनगर-अहमदाबाद के तपस्वी सुश्रावक श्री अरुणजी पुत्र श्री दशरथजी भण्डारी ने परिवारजनों के साथ पधार कर 9 सितम्बर को **65 दिवसीय तपस्या** का प्रत्याख्यान लिया। 10 सितम्बर को पर्युषण पर्व की आराधना के उद्देश्य से विभिन्न क्षेत्रों से गुरुभक्तों का पदार्पण हुआ तथा नवरंगी की आराधना प्रारम्भ हुई।

11 सितम्बर से 18 सितम्बर तक पर्वाधिराज पर्युषण पर विशेष धर्माराधना हुई। ज्ञानाराधना-तपाराधना, पौषधोपासना एवं संवर-आराधना का सुन्दर रूप दृष्टिगोचर हुआ। आठों दिन नवकार मंत्र का अखण्ड जाप हुआ। अंतगडदशासूत्र का वाचन-विवेचन

नवदीक्षित श्रद्धेय श्री विनम्रमुनिजी ने किया तथा महान् अध्यवसायी श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. एवं श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. ने सम्बन्धित दिवसों पर प्रभावकारी प्रवचन फरमाये। पूज्य आचार्यप्रवर ने भी समय-समय पर अमृतमय प्रवचन फरमाए। सैंकड़ों की संख्या में उपवास, तेले एवं अठाई तप सम्पन्न हुए। सुश्राविका श्रीमती कान्ताबाईजी जैन धर्मपत्नी श्री प्रकाशजी जैन 'प्राचार्य' ने मासक्षपण तप के प्रत्याख्यान पूज्य आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से स्वीकार किए। प्रतिदिन दोपहर में श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. द्वारा कल्पसूत्र का वाचन-विवचेन किया गया। पर्युषण में क्रमशः ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, संयम, आत्म-शुद्धि एवं संवत्सरी विषय पर मार्मिक एवं प्रेरक प्रवचनों से जन परिषद् लाभान्वित हुई। चारित्र साधनादिवस के उपलक्ष्य में फरमाया गया कि मानव की शोभा रूप-यौवन से नहीं, अपितु सद् आचरण से है। तप दिवस पर प्रेरणा की गई कि बारह प्रकार के तपों में से कोई न कोई तप अवश्य करना चाहिए, क्योंकि अनेक भवों से बद्ध कर्मों की निर्जरा तप से ही होती है। दान-दिवस पर गुप्त दान की प्रेरणा की गई तथा भाग्य जगाने के लिए दान की महिमा प्रस्तुत की गई। 15 सितम्बर को श्रीमती गुड्डीबाई धर्मसहायिका स्व. श्री निर्मलकुमारजी जैन बरगमा वाले अग्रसेन नगर हिण्डौनसिटी ने पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से **31 दिवसीय तपस्या** का प्रत्याख्यान कर आठवां मासक्षपण तप करने का श्रेय प्राप्त किया है। अनुमोदना स्वरूप उपवास, एकाशन, दया, आयम्बिल आदि की सहज तपस्याएँ हुईं। संयम-साधना दिवस पर संतों ने फरमाया कि चित्त को शान्त करने एवं अनेक समस्याओं का समाधान करने का साधन 'संयम' है। आत्मशुद्धि-दिवस के दिन दूसरों के गुणों की प्रशंसा एवं स्वयं के दोषों की शुद्धि करने की प्रेरणा की गई। अपने पापों की आलोचना करने से माया-मिथ्या एवं निदान इन तीनों से शल्यों से मुक्ति मिल सकती है। बालकों ने इस दिन भिक्षु दया की आराधना की।

18 सितम्बर को संवत्सरी महापर्व के अवसर पर प्रातःकाल से ही धर्म स्थानक छोटा पड़ने लगा। नवदीक्षित श्रद्धेय श्री रविन्द्रमुनीजी, नवदीक्षित श्रद्धेय श्री विनम्रमुनिजी, श्रद्धेय श्री आशीषमुनिजी ने भी सभा को सम्बोधित किया। मुनिश्री ने फरमाया कि पर्युषण की सच्ची आराधना तब होगी जब हम तपस्या के साथ कषायों का शमन करेंगे। आन्तरिक शुद्धि के लिए क्षमापना एक महत्त्वपूर्ण साधन है। श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. ने प्रवचन के प्रारम्भ में गीत के माध्यम से कहा- 'क्षमा का दिन आया है, प्रेरणा यह लाया है, प्रेम बढ़ाओ रे, खमत खमाओ रे।' इस महापर्व की सच्ची आराधना तब है जब हम भीतर में रही कामनाओं से विरक्त बनें। श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. ने फरमाया कि दस धर्मों में पहला धर्म 'क्षमा' है। जिनशासन का यह भव्य प्रासाद क्षमा रूपी नींव पर खड़ा है। जो क्षमा करता

है वह आराधक है। आराधक ही मुक्ति का वरण करता है। हमें कषाय से मुक्त होकर आत्मा को जगाना है। **पूज्य आचार्य भगवन्त श्री हीराचन्द्र जी म.सा. ने अपने उद्बोधन में फरमाया कि संचित कर्मों को क्षय करने का एक साधन सामायिक है। एक घण्टे धर्म स्थानक में सामायिक करने हेतु निवेदन है। आप जैन हैं तो जीवन में प्रामाणिकता अपनायें। बदनामी का काम मत कीजिए। यदि किसी का कुछ दबाया है तो जब भी ध्यान में आ जाए, ब्याज सहित चुकाने की भावना रखें। शुद्धि कर दोगे तो पाप वहीं समाप्त हो जायेगा। अन्यथा 99 लाख भवों के बाद जीव कर्म के उदय में आने का प्रसंग आप सुन चुके हो। अतः सावधान हो जाइये। चाहे छोटा हो या बड़ा सबसे क्षमापना करने के भाव रखिये। सरलभाव रखेंगे तो संवत्सरी मनाना सार्थक होगा। पूज्य आचार्यप्रवर ने वैर नहीं रखने की उत्कृष्ट भावना का संदेश इस अवसर पर प्रदान किया। साथ ही अन्तगडसूत्र में किए गए तप एवं साधना का स्वरूप संक्षेप में उजागर किया। गुरुदेव ने कहा कि जब धर्म खूट जायेगा तो कोई साथ चलने वाला नहीं।**

संवत्सरी के दिन दोपहर बाद आचार्य पट्टावली का संक्षिप्त एवं प्रभावी शैली में विवेचन श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी म.सा. द्वारा किया गया। आलोयणा पाठ श्रद्धेय श्री आशीषमुनिजी म.सा. एवं श्रद्धेय श्री रवीन्द्रमुनिजी म.सा. द्वारा कराया गया। उपवास, तेले एवं अठाई की विपुल संख्या में आराधना हुई। अधिकतर भाई-बहनों ने पौषध की उपासना कर धन्यता का अनुभव किया। भाइयों एवं बहनों की 2 नवरंगी की आराधना उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुई। पौषध करने वालों से स्थानक की तीनों मंजिल खचाखच भरी हुई थी।

पर्युषण पर्व के अवसर पर बैंगलोर, बल्लारी, कादेड़ा, पाली, जयपुर, जोधपुर, सवाईमाधोपुर, गंगापुरसिटी, मण्डावर, हरसाना, खोह, सैमाला, कुश्तला, कोटा, आदर्श नगर, आलनपुर, बजरिया-सवाईमाधोपुर, रतलाम, सैलाना, इन्दौर, खण्डवा, पिलखोड़, लासूर स्टेशन, औरंगाबाद, मुम्बई, जलगांव, बेलगाम, धुलिया, चेन्नई, कलकत्ता, दिल्ली, कुम्भकोणम, जावला, जड़वासा, मोगा (भटिण्डा), अहमदाबाद, पीपाड़ आदि समीपस्थ एवं सुदूर स्थलों से साधना-आराधना के लक्ष्य से अनेक श्रावक-श्राविका हिण्डौन पधारे। प्रत्येक आगत बन्धु ने तप-त्याग कर आदर्श प्रस्तुत किया तथा 11-11 सामायिक कर दया एवं संवर की आराधना की। एकाशन, उपवास, आयम्बिल, बेला, तेला, पचोला एवं अठाई की तपस्या कर आठों ही दिवस वातावरण को धर्ममय बना दिया।

19 सितम्बर को सामूहिक क्षमायाचना का आयोजन हुआ। संघ मंत्री श्री प्रवीणजी जैन

ने पूज्य आचार्यप्रवर के विशाल हृदय एवं सरलता का प्रतिपादन करते हुए संघ की ओर से क्षमायाचना की। इस अवसर पर श्री उगमराजजी कांकरिया-चेन्नई वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री सौभाग्यमलजी जैन-कुशतला, हिण्डौन संघ अध्यक्ष श्री शीतलप्रसाद जी जैन द्वारा विचार प्रकट करते हुए क्षमायाचना की गई। पूज्य आचार्यप्रवर ने छोटे-बड़े सभी से खमतखामणा करते हुए उस दिन गुस्सा नहीं करने का नियम करवाया।

20 सितम्बर से विभिन्न संघों का आगमन प्रारम्भ हो गया। इस दिन हाउसिंग बोर्ड-सवाईमाधोपुर, गंगापुरसिटी, महावीरनगर-मण्डीरोड़ एवं बगावदा संघ ने संवत्सरी सम्बन्धी क्षमायाचना की। महुवा से आए संस्कार केन्द्र के बालक-बालिकाओं ने 1008 बार वन्दना का लाभ लिया। 23 सितम्बर को खोह स्थित संस्कार केन्द्र के बालक-बालिकाओं ने भी इसी प्रकार वन्दना की। 24 सितम्बर को मदनगंज संघ पूज्य आचार्यप्रवर के आगामी चातुर्मास की विनति लेकर श्री चरणों में उपस्थित हुआ। 25 सितम्बर को सवाईमाधोपुर, जयपुर, बारणी, मालेगांव, जामनेर, भरतपुर, नदबई, चेन्नई, कोप्पल, मैसूर, चोरू आदि के श्रावकगण क्षमापना के लिए उपस्थित हुए। 26 सितम्बर को अलीगढ़-रामपुरा के संघ ने चातुर्मास हेतु भावभीनी विनति प्रस्तुत की। धुलिया संघ, पाली से युवा संघ, खेरली से महिला-मण्डल तथा बैंगलोर संघ ने धर्म आराधना का लाभ लिया। 27 सितम्बर को बजरिया सवाईमाधोपुर संघ, गंगापुरसिटी संघ, विजयनगर संघ, कुशतला संघ, नित्यानन्द जयपुर संघ एवं निमाज संघ संवत्सरी सम्बन्धी क्षमापना करने हेतु एवं चातुर्मास की विनति हेतु उपस्थित हुए। श्री मोहनलाल जी जैन सुपुत्र स्व. श्री मोतीलाल जी जैन 'एण्डवा वाले' ने पूज्य आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से मासक्षपण तप के प्रत्याख्यान किए। श्री मोहनलाल जी कृशकाय होते हुए भी तपस्या में अपना पुरुषार्थ करते रहते हैं। 28 सितम्बर को जरखोदा संघ उपस्थित हुआ। दर्शनार्थी श्रावक-श्राविकाओं का क्रम निरन्तर बना हुआ है। हिण्डौन संघ की स्वधर्मी वात्सल्य भावना प्रमोदकारी है। 29 सितम्बर को सवाईमाधोपुर शहर संघ संवत्सरी क्षमायाचना करने हेतु पूज्य गुरुदेव की चरण सन्निधि में उपस्थित हुआ।

यहाँ अब तक 7 मासक्षपण तप सम्पन्न हो चुके हैं। एक 35 दिवसीय तथा एक 65 दिवसीय तप भी सम्पन्न हुए हैं। 21, 19,17,11 की तपस्याएँ भी सम्पन्न हुई हैं। नौ अठाई तप हो चुके हैं। छह पचोले, चोले, तेले आदि की अनेक तपस्याएँ हुई हैं। 28 सितम्बर को एक बहिन ने 24 दिवसीय तप के तथा दूसरी बहिन ने ग्यारह दिवसीय तप के प्रत्याख्यान किए हैं। अब तक 2400 से अधिक संवर की आराधना सम्पन्न हो चुकी है, जो यहाँ के भाइयों की साधना-आराधना के प्रति अभिरुचि की परिचायक है।

उपाध्यायप्रवर के जोधपुर चातुर्मास में धर्माराधना का सुन्दर वातावरण

शान्त-दान्त-गम्भीर पूज्य **उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा.**, मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा. आदि ठाणा 6 के पावन सान्निध्य में सामायिक-स्वाध्याय भवन, नेहरूपार्क में धर्माराधना एवं ज्ञानाराधना में उत्साह बना हुआ है। श्रद्धेय श्री लोकचन्द्र जी म.सा. एवं श्रद्धेय श्री गौतममुनिजी म.सा. के प्रभावी प्रवचन हो रहे हैं। यहाँ श्रीमती संतोषजी धर्मपत्नी श्री बादरमलजी डोसी के 41 दिवसीय तपस्या सम्पन्न हुई है। तेले की तपस्या सैकड़ों की संख्या में हुई है तथा अठाई एवं उसके ऊपर की अनेक तपस्याएँ सम्पन्न हुई हैं। उपवास, आयम्बिल एवं तेले की लड़ी निरन्तर चल रही है। 25 सूत्रीय कार्यक्रम के माध्यम से अच्छी साधना हो रही हैं। गुरुभगवन्तों के स्वास्थ्य में समाधि है तथा संतों में गुप्त तपस्याएँ चल रही हैं। ज्ञान-ध्यान की प्रवृत्ति दिन भर रहती है। अपराह्न 2 से 3 बजे तक स्थानांग सूत्र की वाचना चल रही है। प्रतिक्रमण, थोकड़े एवं पुच्छिंसु णं सीखने का क्रम बना हुआ है। पर्युषण में रविवार को सामूहिक दया व्रत का आयोजन रखा गया है, जिसमें युवकों की विशेष भागीदारी रही। यहाँ समीप के क्षेत्रों के श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं द्वारा तपस्या आदि के प्रत्याख्यान स्वीकार किए जा रहे हैं। श्राविका मण्डल द्वारा कर्म-प्रकृति एवं गति-आगति की परीक्षाएँ सम्पन्न हुई हैं। प्रत्येक रविवार को प्रार्थना के पश्चात् सामूहिक सामायिक एवं गोष्ठी का आयोजन नेहरूपार्क, पावटा, शक्तिनगर आदि सभी क्षेत्रों में चल रहा है। बालोतरा, पाली, हिण्डौन, जलगांव, चेन्नई, कंवलियास, आगोलाई, होलनांथा, बैंगलोर आदि क्षेत्रों से संघों का आगमन हुआ है। **यहाँ भोजनशाला में हरी सब्जी का प्रयोग नहीं होता तथा मिठाई भी एक रहती है। परोसगारी में परिवारजन पूरा सम्भाल रहे हैं।** *-नवरतन डागा, संयोजक, चातुर्मास समिति*

जयपुर तथा अलवर में तपाराधन एवं धर्माराधन के प्रति उत्साह

जयपुर- सेवाभावी श्रद्धेय श्री नन्दीषेणमुनिजी म.सा. आदि ठाणा 4 के सान्निध्य में सैकड़ों उपवास, 43 बेले, 43 तेले, 15 अठाई तथा पाँच, छह, सात, ग्यारह, बारह एवं सोलह दिवसीय तप की आराधना हुई है। नवरंगी का भी आयोजन पर्युषण पर्व में हुआ तथा आठों दिन नवकार मंत्र का अखण्ड जाप चला। पर्युषण पर्व में विशेष उत्साह रहा। संवर एवं पौषध लगभग 1000 हुए हैं। प्रतिक्रमण में भी अच्छी संख्या रही। चातुर्मास के प्रारम्भ से ही श्रावकों द्वारा संवराराधना की जा रही है। सेवाभावी श्री नन्दीषेणमुनिजी म.सा. एवं श्रद्धेय

श्री यशवन्तमुनिजी म.सा. के प्रभावी प्रवचन हो रहे हैं। बैंगलोर, चेन्नई, जोधपुर, अजमेर, औरंगाबाद, जलगांव आदि विभिन्न स्थानों से संघों का आगमन हुआ है। *-डॉ. पी.एस. लोढ़ा*

अलवर- तत्त्वचिन्तक श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. आदि ठाणा 4 के सान्निध्य में निरन्तर धर्माराधना एवं ज्ञानाराधना चल रही है। श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी म.सा. एवं तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनिजी म.सा. के प्रभावी प्रवचन हो रहे हैं। श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनिजी जड़ एवं चेतन के भेद तथा कषाय-विजय को लक्ष्य में रखकर प्रवचन फरमाते हैं। यहाँ जयपुर के दुगड़ जी एवं श्री मानसिंहजी ने मासक्षपण तप पूर्ण किया है। तेले, अठाई आदि की तपस्याएँ चल रही हैं। आयम्बिल की अठाई भी गुप्त रूप से हो रही है। रात्रि में 8.30 बजे विशेष कक्षा होती है, जिसमें जैन-जैनेतर युवक अच्छी रुचि दिखा रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों के संघों का आवागमन बना हुआ है। *-अशोककुमार पालावत, अध्यक्ष*

महासती-मण्डल के चातुर्मासों में धर्मप्रभावना

पावटा, जोधपुर- साध्वीप्रमुखा **शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.**, व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवरजी म.सा. आदि ठाणा 8 की सन्निधि में चातुर्मास के प्रारम्भ से संवत्सरी तक प्रतिदिन दो घण्टे नवकार मंत्र का जाप हुआ। 7 श्राविकाओं ने एकासन तप का मासक्षपण किया है। श्रीमती सीमाजी भंसाली ने अट्ठाईस दिवसीय तप किया है। तेला, चोला, पचोला, छह, सात एवं अठाई की अनेक तपस्याएँ सम्पन्न हुई हैं। संवर एवं पौषध की साधना में श्रावक-श्राविकाओं की अच्छी भागीदारी रही। लगभग 800 से अधिक संवर-पौषध तथा दया, एकाशन, आयम्बिल आदि की तपस्याएँ भी सम्पन्न हुईं। बहनों एवं भाइयों ने सायंकालीन प्रतिक्रमण में अधिकाधिक संख्या में भाग लिया।

पर्युषण पर्व के अवसर पर **व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवरजी म.सा.**, व्याख्यात्री महासती श्री शान्ताकंवरजी म.सा. एवं महासती उषाकंवरजी म.सा. के सान्निध्य में **शक्तिनगर स्थित सामायिक-स्वाध्याय भवन** में विशेष लाभ मिला। यहाँ भी आठों दिन प्रवचन के समय हॉल भरा रहा। महासती मण्डल के यहाँ पधारने से नेहरूपार्क तथा पावटा नहीं पहुँचने वाले श्रावक-श्राविकाओं ने धर्माराधना का पूरा लाभ लिया। एकासन, दया व्रत, आयम्बिल, उपवास आदि तप नियमित होते रहे। नौ, आठ, तेले एवं शताधिक उपवास एवं पौषध हुए। रविवार को सामूहिक दया में लगभग 125 श्रावकों ने भाग लिया। प्रतिदिन 1 घण्टे नवकार मंत्र का जाप हुआ। धार्मिक प्रतियोगिताओं का आयोजन प्रतिदिन रजनी जी एवं उर्मिला जी कांकरिया के सहयोग से सम्पन्न हुआ। संवत्सरी के दिन सायंकाल प्रतिक्रमण में लगभग 400 श्रावकों की उपस्थिति रही। कार्यक्रम का संचालन श्री मोहनलाल जी जीरावला द्वारा किया गया।

सवाईमोधापुर- व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवरजी म.सा., सेवाभावी श्री सुमनलताजी म.सा. आदि ठाणा के सान्निध्य में पर्युषण पर्वाराधना पर महासतीवृन्द के प्रवचनामृत से सभी श्रोता प्रभावित रहे। महासती श्री मैत्रीप्रभाजी म.सा. प्रतिदिन पुच्छिंसु णं एवं दशवैकालिक का प्रार्थना के पश्चात् स्वाध्याय करवा रही है। पर्युषण में बहिनों के द्वारा सतरंगी तथा भाइयों के द्वारा 11 सामायिक, संवर की पचरंगी का अद्भुत कार्यक्रम रहा। आठों दिन अखण्ड नवकार मंत्र का जाप हुआ। पर्युषण में 60 तेले, 11 बेले, 6 पचोले, 10 अठाई और 15 की एक तपस्या सम्पन्न हुई। आठ दिनों में 850 संवर की साधना हुई तथा प्रतिदिन सायंकाल प्रतिक्रमण हुआ। संवत्सरी के दिन महावीर भवन पूरा भरा हुआ था। उस दिन 900 उपवास हुए तथा 350 प्रतिक्रमण एवं 220 पौषध हुए, जिनमें 36 अष्टप्रहर पौषध थे। आठों दिन प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। चातुर्मास के प्रारम्भ से अब तक 22 अठाई तप एवं अनेकविध तपस्याएँ सम्पन्न हुई हैं।

मानसरोवर, जयपुर- विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. आदि ठाणा के सान्निध्य में यह चातुर्मास बड़े ही उल्लास एवं भक्ति भावों से प्रेरित चल रहा है। पर्युषण के आठ दिनों में प्रार्थना, अन्तगडसूत्र की वाचना, प्रवचन एवं पुनः एक उद्‌बोधक प्रवचन सुनने के लिए लगभग 500 की उपस्थिति बनी रही। दिन में कल्पसूत्र एवं प्रतियोगिताओं में विशेष उत्साह रहा। कई श्रावक-श्राविकाओं ने पर्युषण के आठ दिन पूरा लाभ लिया। आठ दिन अखण्ड जाप चला। बेला, अठाई, नौ एवं ग्यारह दिवसीय अनेक तपस्याओं के साथ 70 तेले की तपस्याएँ हुईं। अनेक उपवास, दया एवं एकासन तप हुए। अठाई एवं अठाई से अधिक 22 तपस्याएँ हुई। बालकों से लेकर 85 वर्ष के वृद्धों का उत्साह अनूठा रहा। एक दिन पचपन बकरों को अभयदान देकर मुक्त कराया गया, जिन्हें जैतारण बकराशाला में भिजवाया गया है। *-सुरेशचन्द गोखरू, मंत्री*

सरवाड़, जिला-अजमेर (राज.)- विदुषी महासती श्री सौभाग्यवतीजी म.सा. आदि ठाणा 5 के सान्निध्य में चातुर्मास प्रवेश से ही एकाशन, आयम्बिल, उपवास एवं तेले की लड़ी चल रही है। तेले, पाँच, अठाई एवं ग्यारह की अनेक तपस्याएँ छोटे से ग्राम में सम्पन्न हो चुकी हैं। ग्रामवासी प्रवचनों का अच्छा लाभ ले रहे हैं। धर्माराधना एवं ज्ञानाराधना के साथ तपाराधना भी चल रही है। पर्युषण में तपस्या आदि में विशेष उत्साह रहा।

-सुरेन्द्रकुमार कक्कड़, मंत्री

नित्यानन्दनगर, जयपुर (राज.)- व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवरजी म.सा. आदि ठाणा के सान्निध्य में 30 अगस्त को सुश्राविका श्रीमती निर्मलाजी सुखपालचन्दजी मेहता ने मासक्षपण तप अंगीकार किया। वैशालीनगर के लुंकड़साहब ने 27 दिवसीय उपवास कर

प्रत्याख्यान ग्रहण किया। यहाँ 10 अठाई, 40 तेले तथा छोटी-बड़ी अनेक तपस्याएँ हुईं तथा आठ दिन अखण्ड नवकार मंत्र का जाप हुआ। दया, उपवास की पचरंगी तथा 10 एकाशन के मासक्षपण सम्पन्न हुए। नित्यानन्द नगर में यह प्रथम चातुर्मास है, जिसमें धर्माराधना एवं ज्ञानाराधना का सुन्दर वातावरण बना हुआ है तथा श्रावक-श्राविकाओं में पूरा उत्साह है। *-सुरेशचन्द्र कोठारी, संयुक्त मंत्री*

दूदू ,जिला-जयपुर(राज.)- व्याख्यात्री महासती श्री सरलेशप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 3 के सान्निध्य में चातुर्मास प्रारम्भ से एकाशन, उपवास एवं तेले की लड़ी चल रही है। दूदू में यह प्रथम चातुर्मास है। श्रीमती अंजनाजी मेहता धर्मपत्नी श्री राजेन्द्र जी मेहता ने प्रथम माह में प्रथम बार मासक्षपण (31) की तपस्या सम्पन्न की है। दिगम्बर समाज की श्राविका श्रीमती चांदबाई बोहरा ने 6 अगस्त को महासतीजी के मुखारविन्द से चौविहार संथारा ग्रहण किया, जो समाधिभावों के साथ 5 दिन चला। रक्षाबन्धन पर्व के अवसर पर बच्चों एवं बड़ों ने विभिन्न नियम अंगीकार किए। बालकों ने टी.वी. देखते हुए भोजन नहीं करने, बड़ों को प्रणाम करने, 21 नवकारमंत्र का स्मरण करने आदि के नियम स्वीकार किए। चातुर्मास की चतुर्दशी पर 12 घण्टे का नवकारमंत्र का जाप किया गया। पर्युषण पर्व के आठों दिन नवकार मंत्र के जाप के साथ तप की सुन्दर आराधना हुई। अन्तगड सूत्र की लिखित परीक्षा, हीरागुणाष्टक की मौखिक प्रतियोगिता, ग्रुप प्रश्नमंच, अंताक्षरी, तत्त्वज्ञान आदि की ज्ञान वर्धक प्रतियोगिताएँ सम्पन्न हुईं। पर्युषण पर्व में सजोड़े तेले, पचोले, उपवास, बेला, तेला, चोला, आठ एवं नौ की तपस्याएँ हुईं। श्रीमती सुशीलाजी धर्मपत्नी श्री गौतमजी डोसी ने अर्द्ध मासक्षपण तप किया। यहाँ 26 तेले होना उल्लेखनीय है। अठाई एवं उसके ऊपर की दस तपस्याएँ सम्पन्न हुईं। बालक-बालिकाएँ प्रतिक्रमण, वीरस्तुति, हीराष्टक आदि सीख रहे हैं। श्रावक-श्राविका भी प्रतिक्रमण, जीवधड़ा, नमिपवज्जा, दशवैकालिक के अध्ययन आदि सीख रहे हैं। ज्ञान एवं तप के क्षेत्र में दूदू संघ में पूर्ण उल्लास एवं उमंग का वातावरण है।**-विनोद मेहता**, अध्यक्ष, ओसवाल कॉलोनी, दूदू, जिला-जयपुर (राज.), फोन : 01428-227463

रायचूर (कर्नाटक)- व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा. आदि ठाणा 7 के पावन सान्निध्य में आध्यात्मिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत लगभग 45 श्रावक-श्राविकाओं ने 24 तीर्थंकर की साधना एवं 20 बोलों की आराधना करते हुए 24 दिनों तक संवर की साधना की एवं तप-त्याग के साथ कर्म-निर्जरा का महान् लाभ लिया। 15 एवं 16 अगस्त को **'स्थानांग सूत्र'** पर स्वाध्यायी संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें महासती मण्डल एवं विद्वान् श्रावकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए। आगम पठन के प्रति श्रावक-श्राविकाओं में

जागृति आए, अहो भाव प्रकट हो, आगम के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो इस उद्देश्य से महासतियाँजी के सान्निध्य में प्रतिवर्ष 'आगम स्वाध्याय संगोष्ठी' का आयोजन किया जा रहा है। इससे पूर्व उत्तराध्ययनसूत्र, आचारांग सूत्र एवं सूत्रकृतांग सूत्र पर संगोष्ठी सम्पन्न हो चुकी है। 6 सितम्बर को आत्मशुद्धि की आराधना का कार्यक्रम रखा गया, जिसमें 400-450 श्रावक-श्राविकाओं ने भाग लिया। इस आराधना में 18 पापों में से प्रत्येक पाप की सूक्ष्मता से स्मृति कराकर आलोचना की जाती है। *-विनोद जैन*

माधवनगर (महा.)- व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवतीजी म.सा. आदि ठाणा 5 के सान्निध्य में प्रतिदिन आयम्बिल एवं तेले की लड़ी चल रही है तथा जाप भी चल रहा है। यहाँ आयम्बिल के चार मासक्षपण एवं एकाशन के 31 मासक्षपण सम्पन्न हुए हैं। दो एकान्तर उपवास की तपस्या चल रही है। उपवास तथा दया की एक नवरंगी तथा दयाव्रत की एक पचरंगी सम्पन्न हुई है। सामूहिक दयाव्रत 6 बार सम्पन्न हुए हैं। 22 बार धार्मिक प्रतियोगिताएँ सम्पन्न हो चुकी हैं। यहाँ 34 तेले, 7 अठाई, 9 तथा 11 की तपस्याएँ भी सम्पन्न हो चुकी हैं। कइयों ने जीवन में पहली बार तप किया है। कुछ लोग पहली बार स्थानक आए हैं। संघ में उत्साह बना हुआ है। *-बिरदीचन्दजी बेदमुथा-अध्यक्ष*

दिल्ली- व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 4 के पावन सान्निध्य में नेताजी की गली, गाँधीनगर दिल्ली में धर्माराधना, ज्ञानाराधना एवं तपाराधना का ठाट लगा हुआ है। रत्नसंघ की साध्वीवृन्द का दिल्ली में यह प्रथम चातुर्मास है, फिर भी बिना किसी पूर्व परिचय के म.सा. ने सभी वर्ग के लोगों को प्रभावित किया है। प्रतिदिन प्रवचन में 25 बोल की सरस एवं सरल व्याख्या की जा रही है। मदन-चरित्र, श्रेणिक-चेलना चरित्र एवं अंजना सती चरित्र की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति भी श्रोताओं को आकर्षित कर रही है। चातुर्मास के प्रारम्भ से ही त्याग-प्रत्याख्यान का क्रम बना हुआ है। अब तक 72 तेले, 4 चोले, 8 अठाई तथा 10,11,12,13,15,17 आदि दिनों की भी तपस्याएँ हुई हैं। अब तक 190 आयंबिल, 410 एकासन, 550 बियासन, 180 पौषध एवं 500 से अधिक उपवास हुए हैं। रात्रि-चौविहार त्याग, स्नान त्याग, क्रोध नहीं करना, टी.वी. नहीं देखना आदि के नियम भी चल रहे हैं। बालकों में धार्मिक परिक्षाओं के माध्यम से संस्कारों का बीजारोपण किया जा रहा है। पर्युषण पर्व के दिनों में प्रतिदिन 12 घण्टे नवकारमंत्र का जाप चला। सामान्य दिनों की अपेक्षा पर्युषण में उपस्थिति दुगुनी अर्थात् 400 हो गई। सूत्रों एवं थोकड़ों का ज्ञान भी कराया जा रहा है। एकाशन एवं बियासन के दो-दो मासक्षपण चल रहे हैं। महासतीजी के मुखारविन्द से आठ दम्पतियों ने शीलव्रत के खंद अंगीकार किए हैं। अठाई, तेले, उपवास, आयम्बिल, एकासन, बियासन एवं संवर की लड़ियाँ चल रही हैं।

सामायिक, दया, पौषध, प्रतिक्रमण आदि अधिक से अधिक संख्या में हो रहे हैं।

उम्बरगाँव रोड-वलसाड- व्याख्यात्री महासती श्री सुमतिप्रभाजी म.सा. आदि ठाणा 4 के सान्निध्य में चातुर्मास के प्रारम्भ से ही तेले की लड़ी चल रही है। प्रवचन में अच्छी उपस्थिति रहती है। कुछ अजैन भाई भी प्रवचन श्रवण कर रहे हैं। 9 अगस्त को 'स्वार्थ का संसार' नामक नाटिका प्रस्तुत की गई। 11 अगस्त को पाँच सामायिक एवं टिफिन एकासन रखा गया। 13 अगस्त को दयाव्रत के साथ वक्तृत्व स्पर्धा रखी गई, जिसमें महिलाओं ने अच्छी संख्या में भाग लिया। 15 अगस्त को चन्द्रकला तप प्रारम्भ हुआ। ज्ञान-ध्यान सीखने का अच्छा क्रम बना हुआ है। प्रत्येक शुक्रवार को नारी संस्कार शिविर आयोजित होता है। पर्युषण पर्व एवं चातुर्मास में तेला, अठाई एवं उसके ऊपर की अनेक तपस्याएँ भी हुई हैं। छोटे से गाँव में तीन चातुर्मास होने के पश्चात् भी अच्छी उपस्थिति रहती है तथा श्रावक-श्राविकाओं में उत्साह बना रहता है। *-प्रेमलता मेहता*

सुमेरगंजमण्डी (बूंदी)- व्याख्यात्री महासती श्री पुष्पलताजी म.सा. आदि ठाणा 4 के सान्निध्य में चातुर्मास के प्रारम्भ से ही एकाशन, उपवास, आयंबिल एवं तेले की लड़ी चल रही है। पर्युषण पर्व के दौरान एकाशन की नवरंगी भाइयों एवं बहिनों में सानन्द सम्पन्न हुई है। यहाँ 33 तेले, 4 अठाई एवं ग्यारह दिवसीय 6 तप सम्पन्न हुए हैं। एकासन, आयम्बिल, उपवास, चोला, पचोला, सात की तपस्याएँ भी सम्पन्न हुई हैं। अखण्ड नवकार मंत्र का जाप आठों दिन चला। स्थानकवासी परम्परा के यहाँ 13 घर होते हुए भी धर्माराधन का ठाट लगा हुआ है। इन्द्रगढ़ धर्म संघ के श्रावक-श्राविका प्रतिदिन धर्म श्रवण के लिए उपस्थित होते रहते हैं। यहाँ वैश्य समाज ही नहीं जैनेतर समाज भी धर्म एवं तप के स्वरूप को समझ कर तपस्या में आगे बढ़ रहा है। *-राकेश जैन, अध्यक्ष*

वैशालीनगर, अजमेर- व्याख्यात्री महासती श्री रुचिताश्रीजी म.सा. आदि ठाणा 5 के चातुर्मास में सैंकड़ों एकाशन एवं लगभग 1000 उपवास, आठ बेले, लगभग 50 तेले, 28 अठाई तथा 5,6,7,9,11 की अनेक तपस्याएँ सम्पन्न हुई हैं। एक पचरंगी और सतरंगी की भी आराधना हुई है। पर्युषण के आठ दिनों में विभिन्न विषयों पर प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ और आठों दिन नवकार मंत्र का जाप हुआ। यहाँ अन्तगडसूत्र का वाचन महासती श्री प्रज्ञाश्रीजी ने बिना पुस्तक की सहायता के किया तथा महासती श्री विवेक प्रभाजी म.सा. ने अर्थ समझाया। उन्होंने तथा महासती श्री रुचिताजी म.सा. ने विभिन्न विषयों पर प्रवचन फरमाए। दोपहर में महासती श्री संवेगश्रीजी म.सा. ने कल्पसूत्र का वाचन किया। पर्युषण के प्रवचनों में उपस्थिति अत्यन्त आकर्षक रही। संवत्सरी के दिन का प्रवचन कम्युनिटी हॉल में हुआ। एकाशन के 6 मासक्षपण तथा 35 अठाई तथा 2

आयम्बिल की अठाई सम्पन्न हुई हैं। प्रतिदिन संवर-पौषध हो रहे हैं। *-रमेश सिंघी, सचिव*

'गुण सौरभ गणि हीरा' प्रतियोगिता में उत्तरपुस्तिका जमा करवाने की अंतिम तिथि बढ़ाई

जिनशासन गौरव आचार्य भगवन्त 1008 पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. पर साधनामय जीवन-चरित्र कृति 'गुण सौरभ गणिहीरा' पर आधारित खुली पुस्तक प्रतियोगिता की उत्तर पुस्तिका जमा करवाने की अंतिम तिथि बढ़ाकर **31 दिसम्बर 2015** कर दी गई है। उत्तर पुस्तिका भरकर जमा करवाने का स्थान निम्न है- श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, तमिलनाडु, Swadhyay Bhawan, No. 24/25, Basin Water Works Street, Sowcarpet, Chennai-600079 (T.N.), Mobile No. 097109-99990, 098411-48948

-आर. नरेन्द्र कांकरिया, प्रतियोगिता संयोजक

बनें आगम अध्येता (5)

उत्तराध्ययन सूत्र पर खुली पुस्तक परीक्षा का आयोजन

'बनें आगम अध्येता' योजना के अन्तर्गत 'उत्तराध्ययनसूत्र' पर आयोजित पाँचवीं आगम परीक्षा के द्वितीय चरण में 13 से 24 अध्ययनों में से प्रश्न लिये गये हैं। इसका मूल्यांकन प्रश्न-पत्र 16 अगस्त, 2015 से भेजना प्रारम्भ कर दिया गया है। मूल्यांकन प्रश्न-पत्र भरकर अग्रांकित जयपुर पते पर भिजवाने की अन्तिम तिथि 25 नवम्बर 2015 है। 'उत्तराध्ययन-सूत्र' द्वितीय भाग की मुख्य समापक परीक्षा 20 दिसम्बर 2015 को आयोज्य है। **सम्पर्क सूत्र- अध्यक्ष-**श्रीमती पूर्णिमाजी लोढ़ा, ए-8, महावीर नगर, टोंक रोड़, जयपुर-302018 (राज.), मो. 098290-19396, **महासचिव-** श्रीमती बीनाजी मेहता, जोधपुर-097727-93625

-बीना मेहता, महासचिव

आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड का परीक्षा परिणाम घोषित

अ.भा.श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर द्वारा 12 जुलाई 2015 को आयोजित परीक्षा का परिणाम सितम्बर-2015 के अंक में घोषित कर दिया गया था। अस्थायी वरीयता सूची का प्रकाशन इस अंक में किया जा रहा है। **कक्षा 1 से 12 तक की आगामी परीक्षा 24 जुलाई 2016 को होगी।**

अस्थायी वरीयता सूची

जैन धर्म परिचय (प्रथम कक्षा)

रोल नं.	विद्यार्थी का नाम	केन्द्र	प्राप्तांक	स्थान
91474	रेखा विनोद कवाड़	किशनगढ़,अजमेर	99.75	प्रथम

95472	उषा सुरेश गादिया	नन्दूरा	99.50	द्वितीय
91337	राखी सतीश नाहटा	फूलगांव-महा.	99.25	तृतीय

जैन धर्म प्रवेशिका (द्वितीय कक्षा)

91439	नीलिमा मोहित सुराणा	विज्ञाननगर-कोटा	99.50	प्रथम
93445	प्रीति राकेश छाजेड़	करही (महा.)	99.25	द्वितीय
93663	सोनम आशीष कर्नावट	वैल्लूर	99.00	तृतीय

जैन धर्म प्रथमा (तृतीय कक्षा)

90164	भाग्यश्री राजेश मेहता	मदनगंज-अजमेर	98.00	प्रथम
90310	वन्दना अजय कसवा	हिंगड़घाट-महा.	97.75	द्वितीय
68118	मीना दीपक पटवारी	चित्तौड़	97.50	तृतीय

जैन धर्म मध्यमा (चतुर्थ कक्षा)

75064	रोमा योगेश सिंघवी	फागना	99.00	प्रथम
84379	शांतादेवी रंजीत पीपाड़ा	कालानीनगर-इन्दौर	97.50	द्वितीय
95348	कनिका सिद्धार्थ जैन	सांगरिया	97.00	तृतीय

जैन धर्म चन्द्रिका (पाँचवी कक्षा)

79457	राखी मनोजकुमार गेलड़ा	गंगखेड़	98.00	प्रथम
92633	कविता धीरज बांठिया	गुलाबनगर-जोधपुर	97.50	द्वितीय
80638	शीला हीरालाल लोढ़ा	माजलगांव-गंगखेड़	97.25	तृतीय

जैन धर्म विशारद (छठी कक्षा)

76744	श्रद्धा पूनमचन्द भागवत	कस्बे सुखाना (महा.)	99.50	प्रथम
76674	सरुचि रोहित जैन	दिल्ली	99.00	द्वितीय
80546	नीता विमलकुमार देवड़ा	कारंजा	98.50	तृतीय

जैन धर्म कोविद (सातवीं कक्षा)

77935	सरोज मुकेश बोहरा	तिरूकोल्यार	98.75	प्रथम
88716	प्रीति अभयकुमार छल्लाणी	गंगखेड़	98.00	द्वितीय
82692	अंजु मूलचन्द चोरडिया	इन्दौर	97.75	तृतीय

जैन धर्म भूषण (आठवीं कक्षा)

64615	खुशी नेमीचन्द कटारिया	पीपाड़सिटी	98.00	प्रथम
75713	प्रेम पंकज जैन	चौ.हा.बोर्ड-जोधपुर	96.00	द्वितीय
85444	कुसम गौतमचन्द कोठारी	किशनगढ़-अजमेर	95.50	तृतीय

जैन सिद्धान्त प्रभाकर-पूर्वार्द्ध (नवमीं कक्षा)

63502	भारती महेन्द्र गांधी	पूना (महा.)	96.00	प्रथम
65726	आरती रवीन्द्र चोरडिया	जामनेर (महा.)	95.50	द्वितीय
58915	दीपिका हरीशकुमार जैन	अलीगढ़	94.50	तृतीय

जैन सिद्धान्त प्रभाकर-उत्तरार्द्ध (दसवीं कक्षा)

57974	उषा अरविन्द कटारिया	विजयवाड़ा	95.50	प्रथम
75513	सुनीता अरूण मेहता	जोधपुर	95.00	द्वितीय
84841	गरिमा निर्मल जैन	श्री गंगानगर	94.50	तृतीय

जैन सिद्धान्त रत्नाकर पूर्वार्द्ध (ग्यारहवीं कक्षा)

80456	माधुरी जिनेन्द्रकुमार जैन	आगरा	99.00	प्रथम
62106	आशा प्रसन्नकुमार दुगड़	न्यूवाशरमेनपेठ(चेन्नई)	97.00	द्वितीय
67495	पदमाबाई प्रकाशचन्द लोढ़ा	नंदूरबार (महा.)	96.00	तृतीय

जैन सिद्धान्त रत्नाकर-उत्तरार्द्ध (बारहवीं कक्षा)

63503	मंजुला झूमरलाल सोलंकी	पुणे(महा.)	99.00	प्रथम
58535	शिल्पा चन्द्रकांत तलेड़ा	कूकनूर	98.00	द्वितीय
62041	अर्चना अशोककुमार तलेड़ा	चिदम्बरम	95.00	तृतीय

संक्षिप्त-समाचार

जयपुर- बकरा ईद के पूर्व 24 सितम्बर को यहाँ व्याख्यात्री महासती श्री सुशीलाकंवरजी म.सा. की अभयदान की प्रेरणा से 55 बकरों को मुक्त कराया गया। दिगम्बर मन्दिर में चातुर्मासार्थ विराजित आचार्य विशदसागरजी ने पधार कर इस कार्य की अनुमोदना में कहा- एक किलो स्वर्ण दान देना एवं एक जीव को अभयदान देना बराबर है। यह कार्यक्रम श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ के तत्त्वावधान में मानसरोवर में सम्पन्न हुआ।

-नरेन्द्र कक्कड़

चेन्नई- श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, तमिलनाडु के तत्त्वावधान में स्वाध्यायी अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया, जिसमें तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश एवं कर्नाटक के 45 क्षेत्रों के स्वाध्यायियों को सम्मानित किया गया। *-आर. नरेन्द्र कांकरिया, सहमंत्री*

मुम्बई- जैन फुलवारी द्वारा 20 दिसम्बर 2015 को 37 वें 'अखिल भारतीय सर्व जैन विवाह योग्य युवक-युवती परिचय सम्मेलन' का आयोजन किया जा रहा है। **सम्पर्क सूत्र-** जैन फुलवारी, हिन्द इलेक्ट्रिक प्रिमाइसेस, नागु सयाजी वाड़ी, सामना प्रेस के पास, न्यू प्रभादेवी रोड़, मुम्बई-400025 (महा.), फोनः 09930756598 *-युगराज जैन*

बधाई

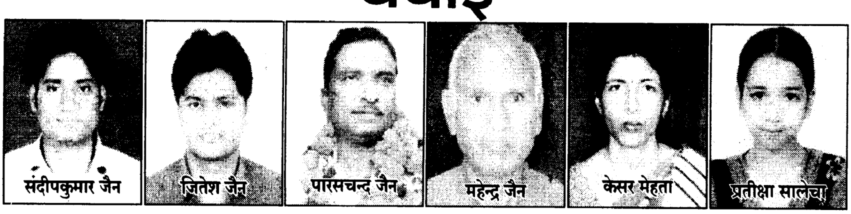
संदीपकुमार जैन | जितेश जैन | पारसचन्द जैन | महेन्द्र जैन | केसर मेहता | प्रतीक्षा सालेचा

जरखोदा- श्री संदीपकुमार जैन सुपुत्र श्रीमती संतोष-श्री उम्मेदचन्दजी जैन (पूर्व सरपंच) का राजस्थान प्रशासनिक एवं अधीनस्थ सेवा-2012 में चयन हुआ है। वर्तमान में आप राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के 'भारतीय संस्कृति एवं इतिहास' विभाग में पी-एच्.डी उपाधि हेतु शोधरत हैं।

बजरिया- जितेश जैन सुपुत्र श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन (एण्डवा वाले) राजस्थान राज्य एवं अधीनस्थ सेवा-2012 में चयनित हुए हैं। आप आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान, जयपुर के पूर्व स्नातक हैं। स्वाध्यायी सेवा एवं प्राकृत भाषा की अध्यापन सेवा भी आप पूर्व में देते रहे हैं। वर्तमान में ''राजस्थान में कृषि सुधार में सहकारी संस्थाओं की भूमिका'' के सन्दर्भ में शोधरत हैं।

सवाईमोधापुर- सुश्रावक श्री पारसचन्दजी जैन बोहरा सवाईमाधोपुर नगर परिषद् के उप सभापति पद पर निर्विरोध निर्वाचित हुए हैं। आप तीसरी बार पार्षद के रूप में निर्वाचित हुए हैं। श्री बोहरा श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, सवाईमाधोपुर के अध्यक्ष एवं मंत्री पद पर कार्य कर चुके हैं। आप सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सक्रियता से भाग लेते हैं। आचार्य श्री हीराचन्द्र जी महाराज सा. के प्रति आपकी अटूट आस्था है।

खेरली- वीरभ्राता श्री महेन्द्र जी जैन (भनोखर वाले) नगर परिषद् के चुनाव में पार्षद निर्वाचित हुए हैं। आपश्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, खेरली के मंत्री हैं तथा रत्नसंघ की महासती इन्दिराप्रभाजी म.सा. के सांसारिक भ्राता हैं।

हिण्डौन- श्रीमती निधि जैन धर्मपत्नी डॉ. अरिहन्त जैन को राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा Isolation and Identification degrading bectriea from soil विषय पर शोध कार्य करने पर पी-एच्.डी की उपाधि प्रदान की गई। डॉ. निधि ने Soil में पाये जाने वाले बैक्टीरिया Bacillus clausii1779 का पता लगाया है। आप वर्तमान में स्टेट फोरेंसिक साइंस लैब जयपुर में कार्यरत हैं। आप गुरुभक्त श्री रामअवतार जी जैन (पहाड़ी वाले) हिण्डौनसिटी की पुत्रवधू हैं। *-विजय जैन, मंत्री*

जोधपुर- श्रीमती केसर मेहता धर्मपत्नी श्री धर्मवीर जी मेहता का 5 सितम्बर 2015 शिक्षक दिवस के अवसर पर रोटरी क्लब ऑफ जोधपुर द्वारा श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में सम्मान किया गया। वर्तमान में आप श्री महावीर उच्च प्राथमिक बालिका विद्यालय, जोधपुर में कार्यरत हैं। आप रत्नसंघ में दीक्षित दिवंगत श्रद्धेय श्री दयामुनि जी की दौहित्री तथा घोड़ों का चौक क्षेत्र की सुश्राविका श्रीमती सज्जनकंवर जी मेहता की सुपुत्री हैं।

जोधपुर- सुश्री प्रतीक्षा सालेचा सुपुत्री श्रीमती इन्द्रा-प्रकाशजी सालेचा द्वारा कक्षा ग्यारहवीं में जीवविज्ञान विषय में श्रेष्ठ अंक प्राप्त करने पर ऐश्वर्या कॉलेज एवं जोधपुर

स्टडी सेन्टर द्वारा 'प्राइड स्टूडेण्ट ऑफ मारवाड़' सम्मान से सम्मानित किया गया।

उदयपुर- कवयित्री रेनू सिरोया 'कुमुदिनी' को मधुकर शोध संस्थान दतिया (म.प्र.) द्वारा पंडित मधुकर जी की पुण्य स्मृति में 'शब्द मधुकर सम्मान' से सम्मानित किया गया। यह सम्मान उनकी साहित्यिक गतिविधियों में सक्रियता और उनकी उपलब्धियों के लिए प्रदान किया गया।

श्रद्धाञ्जलि

हुबली- अनन्य गुरुभक्त वीरपिता सुश्रावक श्री अशोकजी कानूंगा का 24 अगस्त 2015

को स्वर्गारोहण हो गया। आप नियमित सामायिक-स्वाध्याय करने वाले श्रावकरत्न थे। सन्त-सतीवृन्द की सेवा-भक्ति, आहार-विहार एवं श्रमणोचित औषधोपचार में भी वे सदैव तत्पर रहते थे। त्याग-तप से युक्त उनका जीवन हम-सबके लिए प्रेरणादायी है। मारवाड़ में सिवाना तथा कर्नाटक में हुबली स्थित कानूंगा परिवार संघ-सेवा, समाज-सेवा एवं जिनशासन सेवा में सदा अग्रणी रहा है। संघ द्वारा संचालित सभी प्रवृत्तियों में कानूंगा परिवार का महनीय योगदान रहा है।

चेन्नई- संघ-सेवी, युवारत्न श्री प्रशान्तजी बाफणा का 28 अगस्त 2015 को स्वर्गारोहण हो गया। आप मधुरभाषी एवं सेवाभावी श्रावकरत्न थे। आपकी रत्नसंघ के संत-सतियों के प्रति श्रद्धा थी। युवारत्न ने अपने परिवार की परम्पराओं के अनुरूप संघ-समाज एवं धर्म के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन किया।

जोधपुर- धर्मशील, दानशील एवं कर्मशील सुश्रावक श्री सोहनलालजी रांका का 81 वर्ष

की वय में 29 सितम्बर 2015 को स्वर्गारोहण हो गया। वे प्रतिदिन प्रतिक्रमण एवं नित्य 9 सामायिक करते थे। सरलमना एवं उदारमना सुश्रावक में हर जीव के प्रति स्नेह एवं दया का भाव रहता था। स्वाध्यायियों के प्रति भी वे अहोभाव रखते थे, अतः उन्होंने एक स्थानक अपने घर के समीप ही बनाकर सभी को स्वाध्याय व सामायिक हेतु प्रेरित किया। वे हर चतुर्दशी उपवास एवं पौषध करते थे। शेष समय में माला या स्वाध्याय में अपना समय व्यतीत करते थे। वे बच्चों एवं बड़ों सभी को धर्मप्रेरणा करते थे। नित्य व्याख्यान सुनना और गुरु भगवन्तों के दर्शन करना आपके जीवन का क्रम था। 15 द्रव्य से अधिक वे सेवन नहीं करते थे तथा आपके विगय का भी त्याग था। पर्युषण आप सदैव स्थानक में पौषध, उपवास आदि साधना के साथ ही पूर्ण करते थे।

जोधपुर- सुश्री मानसी जैन (कांकरिया) सुपौत्री श्री भंवरलालजी कांकरिया एवं सुपुत्री श्री चन्द्रप्रकाशजी कांकरिया का 30 सितम्बर 2015 को 11 वर्ष की वय में आकस्मिक देहावसान हो गया। अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना की दौहित्री मानसी व्यावहारिक शिक्षण के साथ धार्मिक ज्ञानाभ्यास में भी रुचि रखकर सामायिक-प्रतिक्रमण आदि कण्ठस्थ करने के कारण आचार्य श्री हस्ती जन्म शताब्दी समारोह, पीपाड़ में सम्मानित की गई थी।

जोधपुर- तपस्वी सुश्रावक श्री पूनमचन्द जी मुणोत पुत्र स्व. श्री केशरीमलजी मुणोत का

14 सितम्बर 2015 को 78 वर्ष की उम्र में परलोकगमन हो गया। आपके जीवन में कई प्रकार की धार्मिक प्रवृत्तियाँ थीं, यथा- शीलव्रत, हरी-त्याग, आजीवन जमीकन्द-त्याग, धोवन पानी का नियम, रात्रि चौविहार त्याग, अट्ठाई-तेले, आयम्बिल, उपवास एवं मौन धारण की तपस्या में आप तत्पर रहते थे।

जयपुर- धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री राजकुमारजी जैन पल्लीवाल 'मण्डावर वाले' का 10

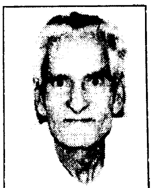

सितम्बर 2015 को 72 वर्ष की आयु में स्वर्गारोहण हो गया। आप सरल स्वभावी, उदारहृदय एवं प्रतिदिन सामायिक करने वाले सुश्रावक थे। आप सदैव हँसमुख व प्रसन्न रहते थे। जीवदया में आप अग्रणी रहते थे। आपकी संघ सतियों के प्रति दृढ़ आस्था थी।

थांवला- सुश्रावक श्री सोहनलालजी सोजतिया का 17 अगस्त 2015 को 81 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। आप धर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान एवं सरलता व सहजता की प्रतिमूर्ति थे। आप श्रमण संघीय सलाहकार उपप्रवर्तक श्री सुकनमलजी म.सा. के धर्मपिता थे।

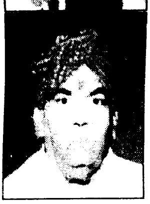

पल्लावरम (चेन्नई)- सुश्रावक श्री प्रकाशचन्दजी खींवसरा कोठारी सुपुत्र श्री रतनलालजी कोठारी का 13 सितम्बर 2015 को स्वर्गवास हो गया। आप प्रतिदिन सामायिक करते थे। आपकी रत्नसंघ के संत-सतियों के प्रति श्रद्धा-भक्ति थी।

पाली- सुश्रावक श्री केवलचन्दजी गुलेच्छा का 21 अगस्त 2015 को 80 वर्ष की वय में

देवलोकगमन हो गया। आप एक जागरूक, कर्मठ एवं धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। नित्य सामायिक प्रतिक्रमण आपकी दिनचर्या का हिस्सा था। आप कई वर्षों से रात्रिभोजन-त्याग, नवकारसी, पोरसी एवं अनेक तप-त्याग करते थे। आपके चौथे व्रत के भी प्रत्याख्यान थे। आप नियमित

स्वाध्याय ध्यान और नये-नये ज्ञान सीखने के प्रति जागरूक थे। संत-सतियों की सेवा-शुश्रूषा में लगे रहते थे। करुणा, प्रेम, मैत्री, उदारता, मधुरता जैसे विशिष्ट सद्गुणों से आपका जीवन ओत-प्रोत था।

ब्यावर- सुश्रावक श्री देवराज जी पदावत का 25 अगस्त 2015 को देहावसान हो गया।

आपके जीवन में सरलता, मधुरता, उदारता थी। संघ द्वारा संचालित सभी प्रवृत्तियों में पदावत परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता रहा है। सभी संत-सतियों के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति एवं आस्था थी। संत-सतियों के दवाई आदि की व्यवस्था में आप सदैव तत्पर रहे।

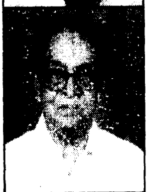

जोधपुर- सुश्रावक श्री उमरावमल जी सुराणा सुपुत्र स्व. श्री शिवनाथजी सुराणा का 82 वर्ष की वय में 31 अगस्त 2015 को देहावसान हो गया। आप नियमित सामायिक करते थे तथा नवकार मंत्र का दिनभर मन ही मन जाप करते थे। आप साधु-वन्दना की नित्य स्वाध्याय करते थे।

जोधपुर- सुश्रावक श्री सुरेश जी सुराणा 'सी.ए.' सुपुत्र स्व. श्री उमरावमल जी सुराणा का 3 सितम्बर 2015 को परलोकगमन हो गया। आप समाजसेवी थे।

बोराड़ा- धर्मनिष्ठ, सरलमना सुश्राविका श्रीमती कमलादेवी जी धर्मपत्नी श्री घासीलाल जी पीपाड़ा का 17 सितम्बर 2015 को स्वर्गवास हो गया।

अलवर- सुश्रावक श्री गोपालचन्दजी जैन (संचेती) का 18 जुलाई 2015 को परलोकगमन हो गया। आप नियमित सामायिक की आराधना करते थे।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जिनवाणी-परिवार तथा अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

सन्त-वाणी

संकलित

दूसरों के द्वारा बलपूर्वक व्यक्तिगत सम्पत्ति के विभाजन मात्र से समाज की गरीबी नहीं मिटेगी, अपितु समाज में आलस्य और विलास की ही वृद्धि होगी, जो दरिद्रता का मूल है। राष्ट्रगत सम्पत्ति हो जाने से सरकार के नाम पर समाज में एक नौकरशाही वर्ग उत्पन्न हो जाता है। समाज में बहुत थोड़े से लोगों के हाथों में देश की सारी सामर्थ्य आ जाती है।

साभार-प्राप्ति-स्वीकार

4000/- मण्डल सत्साहित्य की 20 वर्षीय सदस्यता हेतु प्रत्येक

775 श्री नरेन्द्रजी संचेती, जयपुर (राज.)

776 श्री हार्दिकजी वर्डिया, उदयपुर (राज.)

1000/-जिनवाणी पत्रिका की आजीवन (अधिकतम 20 वर्ष) सदस्यता हेतु प्रत्येक

क्रम संख्या 15473 से 15496 तक 24 सदस्य बने।

'जिनवाणी' मासिक पत्रिका हेतु साभार प्राप्त

6300/- श्रीमती राजकँवरजी, कांताजी, अरूणजी, अजयजी, संजयजी भण्डारी, मणिनगर-अहमदाबाद, श्री अरूणजी सुपुत्र स्व. श्री दशरथजी भंडारी द्वारा हिण्डौनसिटी में 9 सितम्बर 2015 को 63 दिवसीय तपस्या के प्रत्याख्यान ग्रहण करने के उपलक्ष्य में सप्रेम भेंट।

5100/- श्रीमती संतोषकँवरजी धर्मपत्नी श्री रतनलालजी पोखरना, अजमेर, अपने सुपुत्र श्री सुनील कुमारजी चन्द्राजी के सुपुत्र आदेश एवं शालु के आठ की तपस्या सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम भेंट।

5100/- श्री शीतलप्रसादजी, राहुलजी जैन, हिण्डौनसिटी, सुपुत्र राहुलजी के 8 दिवसीय तपस्या व सुपौत्र के जन्म दिवस भाद्रपद शुक्ला पंचमी के उपलक्ष्य में सप्रेम भेंट।

5100/- श्री प्रकाशचन्दजी जैन (प्राचार्य), पंकज कुमारजी, विशाल कुमारजी जैन (जलगाँव वाले), जयपुर, श्रीमती कांताबाईजी धर्मसहायिका श्री प्रकाशचन्दजी जैन के मासखमण की तपस्या गुरु भगवन्तों के सान्निध्य में सम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम भेंट।

5100/- श्रीमती सुमनजी धर्मपत्नी श्री नवरतनजी डागा, जोधपुर, अपनी पुत्रवधू श्रीमती खुशबू जी धर्मपत्नी श्री पुनित जी डागा के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में।

2500/- श्रीमती कमलाबाईजी बम्ब, शूले-बैंगलोर, सुपौत्री नेहाजी बम्ब के अध्यापिका बनने की खुशी में सप्रेम भेंट।

2500/- श्री निर्मल कुमारजी, मनोहर कुमारजी बम्ब, शूले-बैंगलोर।

2222/- श्री महेन्द्रमलजी ललिताजी गांग, सूरत, स्व. मातुश्री श्रीमती पुष्पकँवरजी धर्मपत्नी स्व. श्री मनमोहनमलजी गांग की पुण्य स्मृति में।

2100/- श्री शांतिलालजी, कमलचन्दजी चौधरी, चिंतादरीपेठ-चेन्नई, श्रीमती शांतिबाईजी का स्वर्गवास 11 जून 2015 को हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में भेंट।

2100/- श्री महावीरचंदजी, मोहित कुमारजी सोजतिया, थांवला-नागौर, परम पूजनीय दानवीर सेठ श्री सोहनलालजी सोजतिया सुपुत्र स्व. श्री शंकरलालजी फूलकँवरजी का 17 अगस्त 2015 को स्वर्गवास हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में भेंट।

2100/- श्री विजयराजजी, आनन्द कुमारजी बाघमार, बैंगलोर, पर्वाधिराज पर्युषण गुरुचरणों में

मनाने के उपलक्ष्य में सप्रेम भेंट।

2100/- श्री नरेन्द्र कुमारजी, विपिन कुमारजी सांखला, बैंगलोर, श्रीमती चेतनाजी पुत्रवधू श्री नरेन्द्र कुमारजी संतोषबाईजी धर्मपत्नी श्री विपिन कुमारजी सांखला के अठाई की तपस्या सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम भेंट।

2100/- श्री लालचन्दजी, जीवनलालजी पोरवाल, पाली, श्रीमती चन्द्रादेवीजी धर्मपत्नी श्री जीवनलालजी पोरवाल के सिद्धितप के उपलक्ष्य में।

2100/- श्रीमती चंचलबाईजी, हेमन्तजी, मनोजजी ओस्तवाल, भोपालगढ़-बैंगलोर, पूज्य पिताजी स्व. श्री पारसमलजी ओस्तवाल की प्रथम पुण्यतिथि पर उनकी पावन स्मृति में।

2100/- डॉ. धर्मचन्दजी जैन-श्रीमती मधुजी जैन, जोधपुर, अपने सुपुत्र श्री मुदित जैन द्वारा योग कक्षा आदि के लिए Qriyo Services जोधपुर में प्रारम्भ करने तथा डॉ. जैन के द्वारा न्यूयार्क में पर्युषण सेवा प्रदान करने के उपलक्ष्य में।

1151/- श्रीमती मंजुजी धर्मपत्नी श्री गणपतजी, मीनू, सोनी, टोनीजी सुराणा, जोधपुर, श्रीमती प्रसन्नकंवरजी धर्मपत्नी श्री प्रकाशमल जी भंसाली की 03 सितम्बर 2015 को प्रथम पुण्य स्मृति में।

1100/- श्री अशोक कुमारजी अनिताजी जैन (कुण्डेरा वाले), इन्दौर, सुपुत्र श्री अंकित कुमारजी जैन द्वारा सी.ए. की परीक्षा 2015 उत्तीर्ण करने के उपलक्ष्य में सप्रेम भेंट।

1100/- श्री प्रेमचन्दजी, विजेन्द्र कुमारजी जैन, आगरा, हिण्डौनसिटी में श्रीमती पुष्पादेवीजी धर्मसहायिका श्री विजेन्द्र कुमारजी जैन द्वारा मासखमण (31) दिवसीय तपस्या सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में।

1100/- श्री पुष्पेन्द्र कुमारजी प्रशांत कुमारजी जैन, बरगमा-हिण्डौनसिटी, हिण्डौनसिटी में श्रीमती हेमलताजी जैन धर्मपत्नी श्री पुष्पेन्द्रकुमारजी जैन के मासखमण की तपस्या सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में।

1100/- श्री प्रेमचन्दजी दुगड, चरखी दादरी, सुपुत्र श्री रितेशजी के शुभविवाह के उपलक्ष्य में।

1100/- श्रीमती संतोषजी उम्मेदचन्दजी जैन (पूर्व सरपंच), जरखोदा-बूंदी, सुपुत्र श्री संदीप कुमारजी जैन का राजस्थान प्रशासनिक अधीनस्थ सेवा 2012 में चयन होने की खुशी में।

1100/- श्री पदमराजजी, अमितजी, आशीषजी मेहता (जोधपुर वाले), बैंगलोर, गुरुदर्शन के उपलक्ष्य में सप्रेम भेंट।

1100/- श्री हस्तीमलजी बच्छावत, कोलकाता, मातुश्री श्रीमती प्रेमकुमारीजी बच्छावत की पुण्य स्मृति में भेंट।

1100/- श्री विजयजी मेहता, जोधपुर, पर्युषण पर्व के उपलक्ष्य में।

1100/- श्री सोहनलालजी, अंकितजी, पीयूषजी गोगड़, आगोलाई-जिला-जोधपुर, सुश्री प्रियाजी गोगड़ के अट्ठाई के उपलक्ष्य में।

1100/- श्री मन्नालालजी, पंकजजी, कौशलजी बोथरा, जोधपुर, सहयोगार्थ।

1100/- श्रीमती निवेदिताजी भंसाली, निपुण, प्रवरजी भंसाली, जोधपुर, स्व. श्री सुरेन्द्र जी भंसाली सुपुत्र श्री जसवंतराज जी भंसाली की पुण्य स्मृति में।

1100/- श्रीमती रतनकंवरजी धर्मपत्नी स्व. श्री रिखबचन्दजी सिंघवी, जोधपुर, अपने सुपुत्र श्री

ईश्वरचन्दजी सिंघवी-दिल्ली के अट्ठाई तप करने के उपलक्ष्य में।

1100/- श्री रामलक्ष्मण जी कुम्भट, जोधपुर, पिताश्री मगराजजी कुम्भट की 18 वीं पुण्यतिथि एवं भ्राताश्री महावीरराजजी कुम्भट की 13 वीं पुण्यतिथि पर उनकी पुण्यस्मृति में।

1100/- श्री पदमजी, नरेन्द्रकुमारजी जैन 'एण्डवा वाले', सवाईमाधोपुर, श्री जितेश जी जैन का राजकीय प्रशासनिक सेवा में चयन होने के उपलक्ष्य में।

1100/- श्री बंशीलालजी, लाभचन्दजी मुणोत, कोटा, सुश्रावक श्री पूनमचन्दजी मुणोत सुपुत्र स्व. श्री केशरीमलजी मुणोत का 14 सितम्बर 2015 को स्वर्गवास होने पर उनकी पुण्यस्मृति में।

1100/- श्रीमती कमलादेवी धारीवाल, श्रीमती मंजु-पृथ्वीराजजी धारीवाल, जोधपुर, अपनी दौहित्री सुश्री रेने सुपुत्री श्रीमती प्रितु-रोहनजी मेहता एवं सुपौत्री श्री दीपकजी मेहता, सूरत के 7 वर्ष की लघुवय में अट्ठाई तप करने के उपलक्ष्य में।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के सत्साहित्य के लिए अर्थसहयोग

51,000/- श्रीमती कंचन कुमारीजी डागा, जयपुर द्वारा स्व. श्री माणकचन्दजी सुपुत्र स्व. श्री प्रेमचन्दजी डागा जयपुर की 3 अगस्त को पुण्य स्मृति दिवस पर मंडल से प्रकाशित सत्साहित्य प्रकाशन हेतु सप्रेम भेंट।

50000/- श्री पदमचन्दजी सुनीलजी मोहनोत, जयपुर, सौ.कां. शालिनीजी सुपौत्री श्री पदमचन्दजी एवं सुपुत्री श्री सुनील-शशिजी मोहनोत का शुभविवाह चि. नमनजी सुपुत्र श्री सुनील कुमारजी मुणोत के संग 9 मार्च 2015 को सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम भेंट।

50000/- श्री नीरजजी जैन, हांगकांग, मंडल से प्रकाशित पुस्तक अंतगडदसा सूत्र के पुनः मुद्रण हेतु सप्रेम भेंट।

21000/- श्री पी. सी.कर्णावट, जयपुर, मंडल से प्रकाशित पुस्तक आनुपूर्वी के पुनः मुद्रण हेतु भेंट।

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर हेतु साभार प्राप्त

2100/- श्री हस्तीमल जी डोसी, मेडतासिटी, पर्युषण सहयोगार्थ।

अ.भा.श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड हेतु साभार प्राप्त

11001/- श्री लाभचन्दजी, संजीवजी नाहर, सूरत, पुस्तक प्रकाशन हेतु सहयोग।

11000/- श्री भीकमचन्दजी गोलेछा, जोधपुर, पुस्तक प्रकाशन हेतु सहयोग।

11000/- श्री छोटमलजी सामसुखा, जोधपुर, पुस्तक प्रकाशन हेतु सहयोग।

5000/- श्री शान्तिलालजी कमलचन्दजी चौधरी, चेन्नई, पुस्तक प्रकाशन हेतु सहयोग।

2000/- श्रीमती मंजूजी मेहता, जोधपुर, सहयोगार्थ।

गजेन्द्र निधि द्वारा आचार्य हस्ती स्कॉलरशिप फण्ड

(अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद् द्वारा क्रियान्वित)

दानदाता एवं दान एकत्रित करने वालों की सूची

108000/- श्री घेवरचन्दजी लोढ़ा, जयपुर।

12000/- श्री आशीषजी, खुशबूजी, समरियाजी कोठारी 'ब्यावर वाले', टोकियो-जापान।

12000/- श्री महेन्द्रमलली गांग, सूरत।

12000/- श्री सौरभजी, गरिशमाजी कोठारी, 'ब्यावर वाले', जयपुर।

12000/- श्री राजेश जी भण्डारी, जोधपुर, 31 अगस्त 2015 को वाणिज्यिक कर विभाग से सेवा निवृत्ति के उपलक्ष्य में।

छात्रवृत्ति-योजना में इच्छुक दानदाता एक छात्र के लिए 12000/- रु. अथवा उनके गुणक में जितनी छात्रवृत्तियाँ देना चाहें तदनुसार दानराशि 'गजेन्द्र निधि आचार्य हस्ती स्कॉलरशिप फण्ड' योजना के नाम चैक या ड्राफ्ट(Donations to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of IncomeTax Act 1961) से निम्नांकित पते पर भेजने का कष्ट करें- ***Sh. B. Budhmal Bohra****, Poojaa Foundation, Door No. 921, 1st Floor, Poonamalle High Road, EVR 1st Lane, Chennai-600084(T.N.) (Mob. 9543068382)*

आगामी पर्व तिथि

आश्विन कृष्णा 14, रविवार	11.10.2015	चतुर्दशी
आश्विन कृष्णा 30, सोमवार	12.10.2015	पक्खी
आश्विन शुक्ला 6, सोमवार	19.10.2015	आयम्बिल ओली प्रारम्भ
आश्विन शुक्ला 8, बुधवार	21.10.2015	अष्टमी
आश्विन शुक्ला 10, शुक्रवार	23.10.2015	आचार्य श्री भूधरजी म.सा. की पुण्यतिथि
आश्विन शुक्ला 14, सोमवार	26.10.2015	चतुर्दशी
आश्विन शुक्ला 15, मंगलवार	27.10.2015	पक्खी, आयम्बिल ओली पूर्ण
कार्तिक कृष्णा 1, बुधवार	28.10.2015	आचार्य हमीरमलजी म.सा. की 162 वीं पुण्यतिथि
कार्तिक कृष्णा 8, मंगलवार	03.11.2015	अष्टमी, आचार्य श्री गुमानचन्द्र जी म.सा. की 214 वीं पुण्यतिथि
कार्तिक कृष्णा 14, मंगलवार	10.11.2015	चतुर्दशी
कार्तिक कृष्णा 30, बुधवार	11.11.2015	पक्खी, भगवान महावीर निर्वाण कल्याणक
कार्तिक शुक्ला 5, सोमवार	16.11.2015	ज्ञान पंचमी
कार्तिक शुक्ला 6, मंगलवार	17.11.2015	आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का 53 वां दीक्षा-दिवस
कार्तिक शुक्ला 8, गुरुवार	19.11.2015	अष्टमी

क्षमा-याचना

'जिनवाणी' मासिक पत्रिका के समस्त लेखकों एवं पाठकों से हमारा नियमित सम्बन्ध रहता है। न चाहते हुए भी हमारी किसी भूल से आपके हृदय को ठेस पहुँचना स्वाभाविक है। पर्वाधिराज सम्वत्सरी महापर्व पर हम निर्मल हृदय से अपनी भूल का परिमार्जन करते हुए आपसे हार्दिक क्षमायाचना करते हैं। आशा है आप क्षमा कर मैत्री को प्रगाढ़ बनायेंगे।

-सम्पादक, सहसम्पादक एवं जिनवाणी परिवार

अलविदा बाईपास सर्जरी

अब बाईपास सर्जरी के बारे में कभी ना सोचियें

काउन्टर पलसेशन थैंरेपी

(ई.ई.सी.पी.)

द्वारा प्राकृतिक बाईपास करवायें

काउन्टर पलसेशन थैंरेपी (ई.ई.सी.पी.) में क्या होता हैं :-

हृदय रोगी को साधारणतया 35 दिन तक प्रतिदिन एक घंटे की थैंरेपी ई.ई.सी.पी. मशीन जो कि एफ.डी.ए., अमेरिका द्वारा मान्यता प्राप्त है, पर दी जाती है । यह थैंरेपी ई.ई.सी.पी. मशीन के विशेष प्रकार के बिस्तर पर रोगी को लिटाकर दी जाती है। तीन बड़े हवा से फूलने वाले कफ पैड जो ब्लड प्रेशर उपकरण के कफ पैड की तरह के होते हैं, उन्हें रोगी की पिंडलियों, जांघ एवं कमर के निचले हिस्से पर बाँधा जाता है एवम् इन कफ पैड के इनफ्लेशन एवम् डिफ्लेशन की क्रिया को मशीन से जुड़े कम्प्यूटर द्वारा निर्देशित किया जाता है। इस सारी प्रक्रिया का इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ मशीन के पर्दे पर अवलोकन किया जाता है। मशीन पर उपचार के दौरान कफ पैड के फैलने पर रक्त पूर्ण दबाव से हृदय की ओर जाता है एवं इस दबाव के कारण हृदय के पास सुप्त पड़ी धमनियों में रक्त तीव्र गति से प्रवाहित होकर इन धमनियों को क्रियाशील कर देता है व हृदय को प्रयाप्त मात्रा में रक्त मिलने से व्यक्ति को एन्जिना दर्द (छाती दर्द) नहीं होता हैं। 35 दिन तक यह थैंरेपी लेने से हृदय के पास सुप्त पड़ी धमनियाँ स्थायी रूप से खुल जाती है और छोटी-छोटी धमनियां आपस में जुड़कर नई धमनियों का निर्माण करती हैं।

श्रीमती गुलाब कुम्भट मेमोरियल चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा संचालित

समर्पण हार्ट एण्ड हैल्थ केयर सेन्टर

ए – 12, इण्डस्ट्रीयल एस्टेट, उद्योग भवन के पास, न्यू पावर हाउस रोड़, जोधपुर (राज.)
Email : samarpanjodhpur@gmail.com

फोन : 2432525
सम्पर्क : धिरेन्द्र कुम्भट
93147 14030

卐 चारित्र आत्माओं के लिए ट्रस्ट द्वारा नि:शुल्क उपचार 卐

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

अंतर में सच्चाई चाहिए और व्यवहार में सफाई चाहिए, वही प्राणी संसार में अपना आत्म हित कर जगत के सामने आदर्श रख सकता है ।

– आचार्य श्री हीरा

C/o CHANANMUL UMEDRAJ
BAGHMAR MOTOR FINANCE
S. SAMPATRAJ FINANCIERS
S. RAJAN FINANCIERS

218, Ashoka Road, Lashkar Mohalla,
Mysore-570001 (Karanataka)

With Best Compliments from :

C. Sohanlal Budhraj Sampathraj Rajan
Abhishek, Rohith, Saurav, Akhilesh Baghmar

Tel. : 821-4265431, 2446407 (O)
Mo. : 9845126407 (B), 9845580407 (S), 9845113334 (R)

Gurudev

SURANA™

yes, the best TMT RE-BARS

DRI Plant

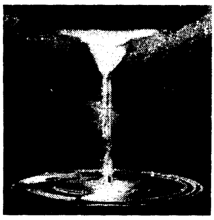

Electric Arc Furnace

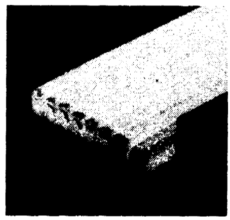

Billets

Rolling Mill

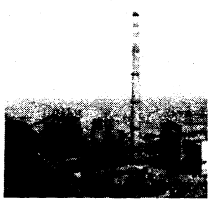

Captive Power Plant

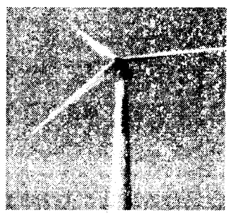

Windmill

With best wishes from

ISO 9001-2008

SURANA INDUSTRIES LIMITED

INTEGRATED STEEL PLANT

MANUFACTURE OF TMT BARS AND ALL KIND OF ALLOY STEEL

29, Whites Road, II Floor, Royapettah, Chennai 600 014/ Ph : 044-28525127 (3 lines) 28525596. Fax: 044-28521143

Email: steelmktg@suranaind.com / www.surana.org.in

STEEL I POWER I MINING

।। श्री महावीराय नमः ।।

हस्ती-हीरा जय जय ! हीरा-मान जय जय !

छोटा सा नियम धोवन का।
लाभ बड़ा इसके पालन का।।

अखण्ड बाल ब्रह्मचारी चारित्र चूड़ामणि, भक्तों के भगवान् 1008
श्री हस्तीमल जी म.सा. के चरणों में हृदय की असीम आस्था से समर्पण
उनके अनमोल खजाने के हीरे-मोती जन-जन के तारणहार
पूज्य आचार्य प्रवर 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा.,
पण्डित रत्न उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा.
एवं समस्त

रत्नाधिक साधु साध्वी मण्डल

के चरण कमलों में भावभरा कोटिशः वन्दन एवं समर्पण...

OUR HUMBLE SALUTATIONS TO THE MOST NOBLE SOULS

PRITHIVIRAJ PREM KUMAR KAVAD
690, Trunk Road, Poonamallee, Chennai - 600 056
Ph. 044-26272196 Mob. : 93810-07273

MANGILAL HARISH KUMAR KAVAD
GURU HASTI THANGA MAALIGAI
(JEWELLERS & BANKERS)
5, Car Street, Poonamallee, Chennai-600 056
Ph. : 044-26272609 Mob. : 95-00-11-44-55

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

प्यास बुझाये, कर्म कटाये
फिर क्यों न अपनायें
धोवन पानी

Narendra Hirawat & Co.

Flat No. 1, Building No. 2, Navjeevan Society,
Senapati Bapat Marg, Matunga (West), MUMBAI-400 016

Trin-Trin

Matunga Office : 022-24370713, 24380713, 66669707
Opera House Office : 022-23669818
Mobile : 09821040899

गजेन्द्र निधि द्वारा संचालित

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद्

।। पुण्यार्जन का सुनहरा अवसर ।।

सदस्यता अभियान से जुड़िये, गुरु भाईयों की शिक्षा में सहयोग करिये।

आदरणीय रत्नबंधुवर,

अत्यधिक हर्ष का विषय है कि छात्रवृत्ति योजना की लाभार्थी सुश्री श्वेता और सुश्री स्मिता सुपुत्री श्रीमान् मुकेश जी बुरड़, शिरपुर के कम्प्यूटर इंजिनियर बनने के बाद शिरपुर में A.R. Patil CBSE School में दोनों प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। लाभार्थी छात्राओं ने अपनी भावना से प्रथम वेतन में से एक-एक छात्र की छात्रवृत्ति राशि का सहयोग किया है। संघ द्वारा ऐसी छात्राओं का तहेदिल से धन्यवाद एवं आभार।

छात्रवृत्ति योजना संघ की महत्त्वपूर्ण योजनाओं में से एक योजना है, अब इस योजना की निरन्तरता के लिए समिति के पदाधिकारियों ने निर्णय लिया है कि छात्रवृत्ति योजना में अर्थसहयोग के लिए सदस्यता अभियान प्रारम्भ किया जायेगा, जिसमें सदस्यों द्वारा प्रतिवर्ष अर्थसहयोग किया जायेगा। सदस्यता अभियान का प्रारूप इस प्रकार है -

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना सदस्यता अभियान

हीरक स्तम्भ सदस्य	स्वर्ण स्तम्भ सदस्य
(5 लाख रुपये प्रति वर्ष)	(1 लाख रुपये प्रति वर्ष)

नोट-सदस्यता को ग्रहण करने वाले सभी सदस्यों का नाम जिनवाणी पत्रिका में प्रति माह छात्रवृत्ति योजना के आरक्षित पृष्ठ पर प्रकाशित किया जायेगा।

जो भी अनन्य गुरुभक्त योजना में अर्थ सहयोग करके सदस्यता ग्रहण करना चाहते हैं एवं एक छात्र के लिए 12000/- रुपये अथवा उनके गुणक में छात्रवृत्ति राशि का सहयोग करने के लिए चैक, ड्राफ्ट या नकद राशि द्वारा जमा या भेज सकते हैं। कोष का खाता विवरण इस प्रकार है -

A/c Name- Gajendra Nidhi Acharya Hasti Scholarship Fund
A/c No. 168010100120722
Bank Name & Address - AXIS BANK LTD. Anna Salai,Chennai(TN) IFSC Code - UTIB0000168
PAN No. - AAATG1995J
Note- Donation to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of Income Tax Act 1961.

छात्रवृत्ति योजना में सदस्यता अभियान के सदस्य बनकर योजना की निरन्तरता को बनाये रखने में अपना अमूल्य योगदान कर पुण्यार्जन किया, ऐसे संघनिष्ठ, श्रेष्ठीवर्यों के नामों की सूची -

हीरक स्तम्भ सदस्य (5 लाख रुपये प्रति वर्ष)	स्वर्ण स्तम्भ सदस्य (1 लाख रुपये प्रति वर्ष)
श्रीमान् मोफतराज जी मुणोत, मुम्बई।	श्रीमान् दूलीचंद बाघमार एण्ड संस,चैन्नई।
युवारत्न श्री हरीश जी कवाड़, चैन्नई।	श्रीमान् लक्ष्मीमल जी लोढ़ा,जोधपुर।
श्रीमान् राजीव जी नीता जी डागा, ह्यूस्टन	श्रीमान् दलीचंद जी सुरेश जी कवाड़, पून्नामल्लई।
	गुप्त सहयोगी, चैन्नई।
	श्रीमान् प्रेम जी कवाड़, चैन्नई।
	श्रीमान् राजेश जी विमल जी पवन जी बोहरा, चैन्नई।
	श्रीमान् गणपत जी हेमन्त जी बाघमार, चैन्नई।

सहयोग के लिए चैक या ड्राफ्ट कार्यालय के इस पते पर भेजें-

B.Budhmal Bohra - Poojaa Foundation, Door No. 921, 1st Floor, Poonamallee High Road, EVR 1st Lane, **CHENNAI-600084** (TN)

छात्रवृत्ति योजना से संबंधित जानकारी के लिए सम्पर्क करें- मनीष जैन, चैन्नई (Mob.095430 68382)

K.L. COTTON MILLS
Kanti
T.M.J. No. 1393

kelico®
remembering quality

स्वाध्याय से ही आप आत्म-निर्माण
और समाज-निर्माण के साथ जिनशासन
को समुन्नत करने में समर्थ होंगे।
-आचार्य हस्ती

KANTILAL SHANTILAL RAJENDRA LUNKER
• PACHPADRA • PALI • ERODE

K.L. ASSOCIATES

'Sanskar', 177-B, Adarsh Nagar, Pali - 306 401 (Raj.)
Mobile: 094141 22757

135, N.M.S.Compound, ERODE - 638 001 (T.N.)
✆ Off : 3205500, Mobile: 93600 25001

Jai Guru Hasti

Jai Guru Heera

Jai Guru Maan

शाश्वत सुख के लिए प्रतिपल प्रयत्न करने वाले जीव मुमुक्षु कहलाते हैं।
ये जीव साधक भी हो सकते है और श्रावक भी ।

- आचार्य श्री हीरा

BHANSALI GROUP

Dhanpatraj V. Bhansali

BHANSALI DEVELOPERS

Sharda Bhawan, 2nd Floor, Nandapatkar Road,
Vile Parle (E), Mumbai - 400 057
Tel. : (O) 26185801 / 32940462
E-MAIL : bhansalidevelopers@yahoo.com

।।श्री महावीराय नमः।।

।।जय गुरु हस्ती।। ।।जय गुरु हीरा-मान।।

रात्रि भोजन त्याग रूप व्रत को आत्म-कल्याण के लिए स्वीकार करना चाहिए।
– भगवान महावीर

रात्रि भोजन त्याग के साथ-साथ भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार करके ही अन्न ग्रहण करना चाहिए।
– आचार्य हस्ती

अहिंसा परमो धर्म

रात्रि भोजन सदोष व तामसी आहार होता है। समाधि का अभिलाषी साधक ऐसी तामसी आहार से दूर ही रहता है।
– आचार्य हीरा

रात्रि भोजन करें या न करें, अगर त्याग नहीं है तो उसे दोष लग ही रहा है। अतः रात्रि भोजन का प्रत्याख्यान करना आवश्यक है।
– उपाध्याय मान

सामूहिक रात्रि भोजन आयोजन त्याग हेतु विनम्र अपील

प्रभु वीर का शासन मिला, गुरु भगवन्तों का सानिध्य मिला ।
श्रद्धा-भक्ति के भाव जगे, सामूहिक भोज रात्रि को तजे ।।

रात्रि भोजन त्याग जैनों की प्रमुख पहचान है।

रात्रि भोजन करना दुर्गति का कारण है।

रात्रि भोजन अनर्थदण्ड व पाप का कारण है।

आओ - हम सब संकल्प करें कि सामूहिक रात्रि भोजन का आयोजन कदापि नहीं करेंगे।

विनीत – **समस्त जैन समाज**

सौजन्य से : मधु कवाड़, चैन्नई

आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या JaipurCity/413/2015-17
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 अक्टूबर, 2015
वर्ष : 73 ★ अंक : 10 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 अक्टूबर, 2015★आश्विन, 2072

waterfront
at KALPATARU
riverside
PANVEL

Premium 2 & 3 BHK residences

022 3064 3065

Promoters: **M/S Kalpataru + Sharyans**

Site Address: Opp. Panch Mukhi Hanuman Temple, Old Mumbai - Pune Highway, Panvel - 410 206. I **Head Office:** 101, Kalpataru Synergy, Opp. Grand Hyatt, Santacruz (E), Mumbai - 400 055. Tel.: + 91 22 3064 3065 I Fax: + 91 22 3064 3131 I Email: sales@kalpataru.com I visit: www.kalpataru.com

Images are for representative purposes only. This property is secured with Housing Development Finance Corporation Limited. The No Objection Certificate / Permission would be provided, if required. Conditions apply.

स्वामी सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के लिए प्रकाशक, मुद्रक - विनय चन्द डागा द्वारा दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर राजस्थान से मुद्रित एवं सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, शॉप नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-3 राजस्थान से प्रकाशित। सम्पादक-डॉ. धर्मचन्द जैन